भारतीय ग्रन्थ माला-संख्या १७

भव्य विभूतियां

शंकर सहाय सक्सेना

भारतीय ग्रन्थ माला—संख्या १७

भव्य विभूतियां

Bhavy Vibhutiyan

लेखक

Shankar Sahay Sak...

शंकर सहाय सक्सेना,

एम. ए., एम. काम., विशारद; अध्यापक, बरेली कालेज.

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थ माला, वृन्दावन

मुद्रक

त्रैलोक्यनाथ शर्मा, जमुना प्रिन्टिंग वर्क्स, मथुरा

प्रथम संस्करण
१२५० प्रति

सन् १९३२ ई०

मूल्य दस आने.

पुस्तकें मिलने के पते —

(१) व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

(२) मैनेजर, जमुना प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा

समर्पण

माता जी,

आपने जिस स्नेह और वात्सल्य प्रेम से अपने इस तुच्छ पुत्र का लालन पालन किया है, वह आधुनिक विमाताओं के लिये एक सुन्दर आदर्श है।

भारी विपत्तियों के समय में भी, आर्थिक संकट की कुछ परवाह न करके, आपने मुझे जो उच्च शिक्षा दिलवायी, वह आप सरीखी मातायें ही कर सकती हैं।

आज यह तुच्छ रचना आपके चरणों में रखते हुये हृदय को हर्ष होता है; आशा है कि आप इसे स्वीकार करेंगी।

आपका प्रिय पुत्र
शंकर

अपनी बात

मैं इस पुस्तक की प्रशंसा या आलोचना, अथवा, नव-युवकों के लिये इसकी उपयोगिता के विषय में कुछ न कहूंगा। पाठक इसे अवलोकन कर स्वयं इसके विषय में अपना निर्णय करें। इस पुस्तक के रचयिता के सम्बन्ध में कुछ कहने की मेरी अभिलाषा भी हो, तो इसके लिये उन्होंने पहले से ही निषेध कर दिया है। हां, यह तो कहना ही होगा कि इस निषेध में लेखक ने ऐसी विनम्रता और अ-विज्ञप्ति का परिचय दिया है, जो आज कल प्रायः दुर्लभ होती है।

पुस्तक, और इसके रचयिता की बात से सहज ही निपट कर, मैं यहां कुछ अपने सम्बन्ध में ही कहने की धृष्टता करता हूं। यह पुस्तक मेरी आकांक्षा—अथवा महत्वाकांक्षा—की पूर्ति करने वाली चीज़ों में है। मैं अपने विविध मित्रों और सम्बन्धियों के प्रेम की स्मृति, भारतीय ग्रन्थ माला में संकलित करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे प्रत्येक प्रेमी का, उसकी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार, इस साहित्य कार्य से कुछ विशेष सम्बन्ध हो; कोई इसके प्रचार में शारीरिक श्रम करने वाला हो, कोई इसके प्रकाशन में आर्थिक सहायता देने वाला हो, कोई इस माला

में इसके योग्य मणि पुरोने वाला हो; और कुछ अपने परामर्श और आशीर्वाद से इसकी मर्यादा बनाये रखने में योग देने वाले हों।

जब कि इस प्रकार के साहित्य के स्वागत करने वालों की भी संख्या पर्याप्त नहीं, तो इससे विशेष सम्बन्ध रखने वालों का कम होना स्वाभाविक ही है। इस ग्रन्थ माला को निष्काम सहयोग प्रदान करने वाले इने गिने सज्जनों में भाई सकसेना जी सम्मिलित हुए हैं, इसे मैं अपना तथा इस कार्य का सौभाग्य मानता हूं। इस समय हमारी कई पुस्तकें, प्रकाश में आने के लिये, आर्थिक दृष्टि से अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर रही हैं; इस रचना का पाठकों के पास पहुंचा सकने का बहुत कुछ श्रेय हमारे चिर-कृपालु मित्र श्री॰ पं॰ त्रैलोक्यनाथ जी शर्म्मा, जमुना प्रिन्टिग वर्क्स, मथुरा, को है।

हमारी इच्छा है कि इस ग्रन्थमाला में न तो किसी पुस्तक की व्यर्थ में भरती की जाय, और, न किसी पुस्तक का आकार प्रकार ही अनावश्यक रूप से बढ़ाया जाय। यों तो, हमारी आर्थिक परिस्थिति से भी इस विषय में पर्याप्त नियंत्रण रहता है, यहां तक कि पुस्तक को सजिल्द या सचित्र करने की बात तो दूर रही, कभी कभी तो उनके पाठ्य विषय में भी काट छांट करनी पड़ जाती है। तथापि, प्रत्येक साहित्य-प्रेमी तथा राष्ट्र-भाषाभिमानी को हमारा सप्रेम

आमंत्रण है कि जब कभी हम अपने ध्येय से विचलित होते जान पड़ें, तो हमें समुचित परामर्श देकर कृतार्थ कर दिया करें। साथ ही, जो सज्जन इस कार्य से सहानुभूति रखते हों, जिन्हें इस माला की पुस्तकें उपयोगी मालूम हों, वे इस बात को स्मरण रखते हुए, कि इसके प्रकाशक अपनी धुन के धनी होते हुये भी, प्रचार और विज्ञप्ति के साधनों से वंचित हैं, अपने क्षेत्र में इस प्रकार के साहित्य का यथेष्ठ प्रचार करना, अपना कर्तव्य समझें।

इस पुस्तक का प्रूफ इसके रचियता के पास नहीं भेजा जा सका है, उसके संशोधन का उत्तरदायित्व इन पंक्तियों के लेखक पर है। पाठ्य विषय में जहां तहां कुछ पंक्तियां रेखांकित की गई हैं, उन पर पाठकों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करना अभीष्ठ है।

विनीत

भगवानदास केला

निवेदन

संसार में, विभूतियों की पूजा प्रत्येक राष्ट्र के लिये आवश्यक है। संसार के उन्नतशील देशों पर दृष्टि डालिये, वहां के भावी नागरिकों के हृदय में अपने राष्ट्र की भव्य विभूतियों के प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति के भाव पाइयेगा। यदि फ्रांसीसी नवयुवक नेपोलियन के नाम को सुनकर फूल उठता है, यदि संयुक्त राज्य अमरीका का निवासी वाशिंगटन के नाम को श्रद्धा और भक्ति से लेता है, और यदि इटैलियन के हृदय में गैरीवाल्डी का नाम लेते ही बिजली सी दौड़ जाती है, तो इसका कारण क्या है? वे राष्ट्र अपने वीरों की पूजा करना जानते हैं। यही कारण है कि वहां का बच्चा बच्चा अपने देश की वीर आत्माओं के आदर्श को सामने रखकर, देश के लिये बलिदान होना सीखता है।

हत-भाग्य भारतवर्ष में तो सारी बातें ही निराली हैं, हम अपने देश की भव्य विभूतियों के विषय में कुछ जानते ही नहीं। यही कारण है कि भारतीय नवयुवकों और बच्चों के हृदय में महाराणा प्रताप, शिवाजी, और छत्रसाल के नाम

लेने से तनिक भी उत्साह पैदा नहीं होता। जब जब लेखक को, विद्यार्थियों से बात चीत करने का अवसर मिला है, तब तब उसको वीर-पूजा का यह अभाव बहुत खटका है।

यही कारण है कि इस तरह की बहुत सी पुस्तकें होते हुये भी, मैं इस छोटी सी पुस्तक को लेकर उपस्थित हुआ हूं। इस पुस्तक में कोई विशेषता है, यह तो मैं कैसे कहूं! हां, लिखते समय इस बात का अवश्य ध्यान रक्खा गया है कि छोटी आयु के विद्यार्थी भी इसे भली भांति समझ सकें। इस प्रयत्न में मुझे सफलता मिली है, अथवा नहीं, यह तो पाठक ही जान सकते हैं!

अन्त में मुझे यह कहते अत्यन्त हर्ष होता है कि इस पुस्तक के लिखे जाने का श्रेय श्री० भगवानदास केला को ही है। श्री केला जी तो साहित्यक तपस्वी हैं ही, परन्तु वे दूसरों से भी काम लेना जानते हैं। यह उनके प्रोत्साहन और परामर्श का ही फल है कि मैं यह पुस्तक लि सकाख।

विनीत

बरेली कालेज, बरेली

शंकर सहाय सक्सेना

विषय-सूची.

भव्य विभूतियां

(१)

पूर्वाभास

हममें से अनेक यह चाहते हैं कि संसार में हमारे द्वारा वह काम हों जिनको दुनिया श्रद्धा से देखे। जब कोई युवक अपने भावी जीवन पर विचार करता है तो उसके हृदय में तरह तरह के विचार आते जाते हैं। हृदय में जितने ऊंचे विचार उठते हैं, मनुष्य भी उतना ही ऊंचा बन सकता है। क्या पाठकों ने इस बात का अनुभव किया है? यदि कोई नवयुवक केवल इस उधेड़-बुन में लगा रहता है कि वह पढ़ाई समाप्त करने के उपरान्त, कोई

नौकरी आदि करके, किस प्रकार अपना जीवन-निर्वाह करेगा, तो समझलो कि उदर-पालन के अतिरिक्त उससे और कुछ न हो सकेगा।

दुनिया में मनुष्य बहुधा यश प्राप्त करना चाहता है, किन्तु यश कोई खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है; इसके लिये बड़े त्याग और तपस्या की आवश्यकता होती है। संसार की प्रसिद्ध विभूतियों के जीवन चरित्र पढ़ जाइये, उन में एक ही बात मिलती है, 'यदि चाहते हो कि संसार में तुम्हारा नाम श्रद्धा और भक्ति से लिया जावे तो अपने जीवन का लक्ष्य ऊंचा बनाओ, और उस लक्ष्य तक पहुंचने के लिये अपने हृदय में त्याग और बलिदान की भावना जागृत करो।'

यदि आज महाराणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, जयमल, पन्ना धाय, महारानी लक्ष्मी बाई, और गुरु गोविन्द सिंह जी के नाम लेने से हमारे हृदय में वीर भावों का संचार होने लगता है, और हमारा मस्तक श्रद्धा और भक्ति से झुक जाता है, तो इस कारण नहीं कि वे लोग राजा थे। न जाने कितने राजा भारतवर्ष में उत्पन्न हुये, और मर गये, आज हम लोगों को उनके नाम भी याद नहीं रहे। बात यह है, दुनिया बड़ा उसी को समझती है जो बड़े काम करता है।

केवल बड़े घराने में उत्पन्न होने से कोई बड़ा नहीं हो जाता। हम लोगों में से कितने ही तो यह समझे बैठे हैं कि हम दुनिया में बड़े काम नहीं कर सकेंगे। बस, यही भाव हमें निर्बल बना डालता है। लेकिन याद रखो, मनुष्य में वह शक्ति है कि वह जितना बड़ा बनना चाहे, बन सकता है।

यदि चाहते हो कि तुम भी महाराणा प्रताप, छत्रसाल, और जयमल के समान बनो तो आज ही से तैयारियां करना आरम्भ करदो। यदि हम इन वीर आत्माओं के जीवन पर ध्यान-पूर्वक दृष्टि डालें तो हमें एक ऐसा स्पष्ट मार्ग दिखलाई देता है, जिस पर चलने से अवश्य ही हम ऊँचा उठा सकते हैं। जानना चाहते हो वह मार्ग ? जितनी भी विभूतियां संसार में उत्पन्न हुईं; उन सबके सामने एक ऊँचा लक्ष्य था; यदि महाराणा प्रताप चित्तौर को स्वतंत्र करमा चाहते थे, यदि महाराज छत्रसाल के सामने बुन्देलखण्ड की स्वतंत्रता का प्रश्न था, तो दुर्गादास के सामने जोधपुर के राजवंश की सेवा, और अपनी मातृ-भूमि मारवाड़ की रक्षा का प्रश्न था। हममें से हर एक के सामने उच्च लक्ष्य होना चाहिये; वह लक्ष्य चाहे जो हो।

लक्ष्य स्थिर कर लेने के उपरान्त, उस तक पहुंचने के लिये दृढ़ रहकर, कष्ट सहते हुये, पागल की भांति उसके लिये तैयारियां करनी चाहिये। जितने भी बड़े आदमी हुये

हैं, वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पागल बने थे। यदि हमें भी कोई बड़ा कार्य करना है तो जीवन के सारे सुखों पर लात मार कर, बड़े से बड़ा कष्ट सहकर, अपने मार्ग पर धैर्य पूर्वक चलते रहना चाहिये। खेद है कि हममें कष्ट सहने का अभ्यास नहीं रहा, तनिक से कष्ट से हम विचलित हो उठते हैं। जो मनुष्य विलासितामय जीवन व्यतीत करते हुये संसार में बड़े काम करना चाहते हैं, उनकी आशा स्वप्न के समान है। जो मनुष्य कष्टों को सहन नहीं कर सकता, वह कभी भी बड़े काम नहीं कर सकता। त्याग, और बलिदान से ही मनुष्य बड़ा बनता है।

भारतीय नवयुवकों में वह स्वाभिमान, वह त्याग, और वह बलिदान, आज कहां हैं! उनके अद्‌भुत् उदाहरण तो आज स्वप्न से प्रतीत होते हैं। आज हमारे समाज में ढोंग और पाखण्ड का श्रोत बह रहा है। फ़ैशनेबिल बनने, मंच पर खड़े होकर लच्छेदार भाषण देने, तथा, दलबन्दी करके नेता बनने में ही हमें आनन्द आता है। एक दिन था, जब हम लोगों में स्वाभिमान कूट कूट कर भरा हुआ था, किन्तु आज जो अधिक से अधिक चापलूसी कर सकता है, वही सफल समझा जाता है। इन पंक्तियों के लेखक को राजस्थान में रहने का अवसर मिला है किन्तु जिस आशा से वह राजस्थान की ओर गया था, वह तो वहां पहुंचते ही लुप्त हो

गयी। जो राजपूत जाति आन को, अपनी जान देकर भी, रखना जानती थी, आज उसकी दुर्दशा को देखकर हृदय रो उठता है। आज राजपूत जाति में स्वाभिमान कहां है!

अन्य स्थानों के प्रसिद्ध वीरों की बात तो जाने दीजिये। राजस्थान के ही इतिहास को पढ़िये, ऐसी हज़ारों घटनायें मिलेंगी, जिनमें साधारण राजपूतों ने वह त्याग दिखलाया है, जो संसार की अन्य जातियों में बहुत कम पाया जाता है।

मेवाड़ में सालुम्बर* तथा बिदनौर† के ठिकाने बहुत प्रतिष्ठित हैं। दोनों राजवंशों ने मेवाड़ की स्वतंत्रता के युद्धों में बहुत से वीरों का बलिदान किया था। एक बार इन राजवंशों में यह झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि मेवाड़ की सेना में आगे कौन रहे। उसी समय मेवाड़ के महाराणा को गुजरात के सूबेदार पर चढ़ाई करनी थी। महाराणा ने दोनों नरेशों को बुलाकर कहा कि उन में से जो शत्रु के क़िले में पहले घुसेगा, वही मेवाड़ की सेना में आगे रह सकेगा। दोनों ही नरेश अपनी अपनी सेनाओं को लेकर चल पड़े। बिदनौर वालों ने क़िले के पिछले भाग से आक्रमण किया, और सालुम्बर वालों ने अगले भाग पर धावा बोल

* यह उदयपुर से लगभग चालीस मील दक्षिण में, एक छोटा सा राज्य है।

† उदयपुर का एक ठिकाना।

दिया। सालूम्बर की सेना लड़ती हुई फाटक तक पहुंच गयी; किन्तु सालूम्बर नरेश का हाथी फाटक तोड़ने के लिये आगे बढ़ता ही न था, क्योंकि फाटक में तेज़ नोकीली कीलें लगी हुई थीं। उधर, बिदनौर वाले क़िले की दीवार पर चढ़ गये थे, और, वहां भीषण युद्ध कर रहे थे। जब सालूम्बर नरेश को यह मालूम हुआ कि वे लोग क़िले पर पहुंचने ही वाले हैं, तो उन के मुख पर लाली छा गई। वे हाथी से उतर कर उसके सामने खड़े होगये। उन्होंने पीलवान से, हाथी बढ़ाने को, कहा। पीलवान झिझका, लेकिन वीरवर सालूम्बर नरेश ने कड़ी आवाज़ से कहा "पीलवान! सालूम्बर राजवंश की इज्ज़त मेरी जान से कहीं मूल्यवान है, हाथी आगे बढ़ाओ।" हाथी आगे बढ़ा। सालूम्बर नरेश का शरीर कीलों से छिद गया, पर क़िले का फाटक भी टूटगया। मरकर भी सालूम्बर नरेश अमर हो गये!

अब भी राजस्थान वही है, वे ही वंश आज भी विद्यमान हैं, किन्तु राजस्थान की वह आन और बान स्वप्न-तुल्य है। आज उन वीर आत्माओं के वंशज चापलूसी में ही आनन्द और गौरव मानने लगे हैं। बात यह है कि हमने अपनी संतान में वीर भावों को जागृत नहीं किया। आज भी हम में वह स्वाभिमान उत्पन्न हो सकता है; आवश्यकता है, केवल उन भूले हुये और लुप्त भावों को एक बार फिर से जागृत कर देने की।

इस खोई हुई सम्पत्ति को फिर से पाने के लिये, हमें अपनी संतान को देश की भव्य-विभूतियों के गुण गान सुनाने होंगे। उन वीर आत्माओं के जन्म दिनों पर देश भर में राष्ट्रीय त्यौहार मनाने होंगे, तथा उनके स्मारक बनाकर जनता में उच्च भावों का संचार करना होगा । तभी तो देश में त्याग और बलिदान के भाव जागृत हो सकेंगे।

(२)

महाराणा प्रताप

जेहि हठ राखै धर्म को, तेहि राखै करतार।

— प्रताप

भारतवर्ष में मुग़लों की विजय ध्वजा-फहरा चुकी थी, हुमायूं की मृत्यु के उपरान्त, उसका पुत्र अकबर दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान था। चतुर अकबर यह जानता था कि वह राजपूतों के साथ मेल करके ही, मुग़ल राज्य की नींव हिन्दुस्थान में जमा सकता है। बस, उसने धीरे धीरे राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता में लाने का प्रयत्न किया। जयपूर, जोधपुर, बीकानेर तथा अन्य स्थानों के राजपूत

राजाओं ने सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार करली। बात केवल यहीं तक नहीं रही। राजपूत राजाओं ने अपनी बहिनों और बेटियों को मुग़ल सम्राट के रनिवास में भेजना प्रारम्भ कर दिया। जो क्षत्राणियां अपने धर्म पर बलिदान होजाना एक साधारण कार्य समझती थीं, वे मुग़लों की पत्नियों के रूप में दिखाई देने लगीं।

जो राजपूत वीर अपनी आन को अपने प्राणों से भी अधिक मानते थे, वे पद-लालसा से मुग़ल सम्राट और ऊंचे अधिकारियों को खुशी खुशी से अपनी बेटियां देने लगे। वंश की प्रतिष्ठा के विचार आर्य सभ्यता के जोश, तथा राजपूती शान को, यह वीर जाति भूलने लगी। भय होने लगा कि कहीं राजपूत जाति का गौरव नष्ट न हो जाय। बात भी ऐसी ही थी, प्रत्येक राजपूत राजा उस दिन की बाट बड़ी आतुरता से जोहता था, जिस दिन सम्राट उसकी लड़की अथवा बहिन की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसको अपने रनिवास में रक्खे, और उस राजा को मुग़ल दरबार में ऊंचा पद मिले।

जब दशा इतनी बिगड़ चुकी थी, तब परतंत्र होने का उन्हें क्या दुख होता! किन्तु इस अंधकारमय समय में भी एक महान तेजस्वी प्रकाशमय ज्योति दिखाई दे रही थी, जिसकी ओर प्रत्येक हिन्दू आशा-भरे नेत्रों से देख

रहा था । जानना चाहते हो वह कौन था वह थे, राणाप्रताप! उस समय सारी हिन्दू जाति उनकी ओर आशा-भरी दृष्टि से देखती हुई, मानों यह कह रही थी "ओ आर्य सभ्यता के पुजारी, स्वतंत्रता के पागल सैनिक ! आज हमारी लाज तुम्हारे हाथ है। आज इस जाति का सिर तुम्हारे ही कारण ऊंचा है; कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे तनिक विचलित होने से हमारा सिर नीचे झुक जावे।"

.. इन्हीं प्रताप के सेनापतित्व में मेवाड़ के वीर राजपूत अपनी मातृ-भूमि को स्वतंत्र बनाये रखने के लिये वर्षों तक जूझते रहे। वाहरे, मेवाड़ के भीलो और राजपूतो ! तुम्हारे वह कार्य देश के मृतक शरीर में जीवन संचार करने वाले हैं। आज भी भारतीय युवक तुम्हारे आत्म-त्याग की गाथाओं को सुनकर मस्त हो उठते हैं। क्यों न हो, तुमने इतिहास में, हमारे लिये ऐसे उदाहरण छोड़ दिये, जिनकी समता संसार की कोई अन्य जाति नहीं कर सकती।

भारतवर्ष के मान-चित्र पर दृष्टि डालो तो राजपूताने का बड़ा भारी प्रान्त मध्य में फैला हुआ दिखायी देता है । यह राजपूतों का देश है, इस कारण इसे राजपूताना कहते हैं । इसी राजपूताने के दक्षिण भाग में एक पहाड़ी प्रदेश है, वही तो प्रसिद्ध मेवाड़ है। मेवाड़ एक विचित्र प्रदेश है । पथरीली ज़मीन, बीहड़ वन, ऊंचे पर्वतों से घिरा हुआ,

पानी की बहुतायत । वनस्पति से लहलहाता यह प्रदेश स्वतंत्रता के युद्धों में बलिदान होने वाले नर-रत्नों की जन्म-भूमि रहा है। बप्पा रावल, महाराणा सांगा, पन्ना धाय, वीर वर जयमल फत्ता, महाराणा कुम्भ, गोरा, बादल और प्रताप जैसे स्वतंत्रता के पुजारियों को जन्म देने का गौरव इसी भूमि को प्राप्त है। यही कारण है कि आज भी मेवाड़ को लोग श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं । चित्तौड़ और हल्दी घाटी तो क्रमशः हमारे तीर्थ बनते जा रहे हैं।

प्रताप ऐसे विकट समय में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठे, जब कि देश के समस्त राजपूत राजा सम्राट की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। यही नहीं, प्रताप के भाई शक्तिसिंह तथा और भी मेवाड़ के राजघराने के लोग सम्राट के कृपा-पात्र बन चुके थे। किन्तु वीरवर प्रताप उन लोगों में से नहीं थे, जो विपत्तियों से घबरा उठते हैं । मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बैठते ही प्रताप का हृदय, अपने पूर्वजों के पवित्र स्थान चित्तौड़ पर मुग़लों के झंडे को फहराता देखकर, व्याकुल हो उठा। स्वतंत्रता का वह पागल सैनिक यह कैसे देख सकता था कि जिस स्थान की रक्षा करने में उनके पूर्वजों ने अपने लाखों वीरों का खून बहाया हो, वह उनके रहते हुए विजातियों के हाथ में रहे ! गद्दी पर बैठते ही प्रताप ने यह प्रण किया कि जब तक मैं चित्तौड़ पर मेवाड़

की लाल ध्वजा न फहरा दूँ, तब तक न महलों में रहूँगा, न बिछौने पर सोऊँगा, और न थाल में भोजन करूंगा। ऐसा कठिन व्रत के लेने का एक बहुत बड़ा कारण है। प्रताप जैसे वीर थे; वैसे बुद्धिमान भी थे। उन्होंने देखा कि अपने छोटे से राज्य की शक्ति को बटोर कर अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट से लोहा लेना कोई सहल काम नहीं है। इतने बड़े कार्य के लिये तैयारी भी उतनी ही बड़ी होनी चाहिये। बस, उन्होंने अपने जीवन को अधिक कठोर बनाना प्रारम्भ कर दिया। हममें से बहुत से लोग ऐसे हैं जो तनिक सी कठिनाई उपस्थित होने से ही हताश हो जाते हैं। हमने अपना जीवन विलासितामय बना डाला है; यही कारण है कि हम कठिनाइयों का सामना नहीं कर सकते। स्कूलों और कालेजों में प्रायः देखा जाता है कि जो विद्यार्थी सादा तथा कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं, वे अपने सहपाठियों से बाज़ी मार लेते हैं। यदि हम दुनियां में यशस्वी बनना चाहते हैं तो हमें अपना जीवन सादा बनाना होगा। प्रताप को यह मंत्र याद था; उन्होंने उसके अनुसार ही आचरण किया।

महाराणा प्रताप सम्राट अकबर से युद्ध करना चाहते ही थे। दैवयोग से एक ऐसी घटना हुई, जिसके कारण उन्हें तुरन्त ही रण-भूमि में जूझना पड़ा। अकबर ने राजपूत

राजाओं को फुसला कर उन्हीं के द्वारा अपना राज्य बढ़ाया था। उससे यह कैसे देखा जा सकता था कि मेवाड़ का छोटा सा राज्य उसकी प्रबल शक्ति की परवाह न कर, स्वतंत्रता का आनन्द लूटता रहे। उसने, प्रताप के सिंहासन पर बैठते ही, अपने कृपा-पात्र आमेर के कुँवर मानसिंह को उनके पास भेजा।

प्रताप, मानसिंह को बचपन से जानते थे। उन्होंने उनको उदयपुर से सात मील देवारी* के स्थान पर उदय सागर झील के पास वाले महलों में ठहराया। अतिथि-सत्कार में कोई कमी नहीं हुई। जब प्रताप मानसिंह से मिले तो कुशल क्षेम पूंछ चुकने के बाद कुँवर मानसिंह ने प्रताप को अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेने को कहा। वे कहने लगे यह तो आप जानते ही हैं कि अकबर की विजय-दुंदभी आज सारे देश में बज रही है। जिस राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है, वह आज ऐश्वर्यवान और सम्पत्तिशाली है, तथा उसका शाही दरबार में अच्छा मान है। यदि देखा जावे तो अकबर को सम्राट मान लेने से हमारी कोई हानि नहीं हैं। आप व्यर्थ में क्यों ना-समझी करते हैं,

* यह स्थान चित्तौड़ से उदयपुर जाते समय रास्ते में पड़ता है। यहां उदयपुर-चित्तौड़ रेलवे का छोटा सा स्टेशन है।

क्या आप मेवाड़ राज्य की छोटी सी शक्ति से अकबर का सामना कर सकेंगे ? मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यदि आप उन्हें केवल अपना सम्राट मान लें, तो आपको कुछ कष्ट न दिया जायगा।"

मेवाड़ का वांका वीर, जो अभी तक किसी प्रकार मान-सिंह की बातों को सुन रहा था, अब न रुक सका, और उत्तेजित होकर कहने लगा, "कुंवर साहब ! जानता हूं अकबर के बल और वैभव को। परन्तु, आपको उनकी अधीनता में जो लाभ दिखाई दे रहा है, वह मुझ मेवाड़ के पहाड़ों में रहने वाले की समझ में नहीं आता। क्या अकबर के सामने फ़र्श तक सिर झुका कर सलाम करने में लाभ है ? क्या उनके नौकरों में खड़े होने में लाभ है ? और, क्या अपनी वंश मर्यादा को मिट्टी में मिलाकर अपनी बहिन बेटियों को उनके रनिवास में भेज देने में लाभ है ? हो सकता है कि यह सब आपको लाभ दिखाई देते हों, किन्तु मुझे तो इनमें कोई लाभ मालूम नहीं होता। मुझे तो दरबार की सभ्यता भी नहीं आती, मेरा सिर तो भगवान शंकर के ही सामने झुक सकता है।

मानसिंह इन कटाक्षों को सुनकर क्रोधित हो उठे और कहने लगे "महाराणा जी ! तो क्या आपको गर्व है कि

आपको दिल्ली जाकर सलाम नहीं करना पड़ता ? देखता हूं यह घमंड कितने दिन रहता है !

महाराणा प्रताप ने आवेश में आकर ऊंची आवाज़ से कहा 'जाओ, कुँवर साहब जाओ, अकबर और उसकी सेना को लेकर जब चाहो तो मेवाड़ पर चढ़ाई कर सकते हो। मेवाड़ वालों की मुट्ठी से अभी तलवार गिर नहीं गयी। वे अपनी आन पर मरना जानते हैं।'

कुँअर मानसिंह उदयपुर से सीधे दिल्ली आये, और सम्राट से अपने अपमान का हाल कहा। अब क्या था, अकबर को अच्छा अवसर मिला और उसने एक बहुत बड़ी सेना के साथ, मानसिंह को मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये भेज दिया। मानसिंह को भी अपने अपमान का बदला चुकाने का अच्छा अवसर मिला और वे हर्ष-पूर्वक मेवाड़ की ओर चल दिये।

इस ओर प्रताप भी रण-यात्रा की तैयारियां करने लगे। शीघ्र ही मेवाड़ के सब सामंत बुलाये गये; और वे महाराणा की आज्ञा पाकर अपनी अपनी सेना लेकर उदयपुर आजमे।

× × × ×

महाराणा का दरबार लगा हुआ था। सामंत लोग अपने अपने स्थानों पर बैठे हुये महाराणा के मुख की ओर देख रहे

थे। महाराणा गम्भीर स्वर में बोले, " भाइयो! आज हम लोगों की परीक्षा का दिन है। मुग़ल लोग अन्य राज्यों पर विजय पाकर पागल हो रहे हैं, वे मेवाड़ के लाल झंडे को, शान के साथ फहराता, कैसे देख सकते हैं ! मानसिंह का संवाद तो आप लोगों ने सुन ही लिया होगा। अब शीघ्र ही टिड्डी दल की भांति मुग़ल सेना मेवाड़ पर चढ़ाई करेगी। मैं तो इस सुअवसर की खोज में पहले से ही था। मेरी समझ में तो एक ही बात आती है, या तो जननी जन्म भूमि मेवाड़ की विजय पताका हमारे पूर्वजों के प्राचीन दुर्ग चितौड़ पर फहराती दिखाई दे, नहीं तो, हम माता की स्वतंत्रता के लिये अपने प्राणों की आहुति दे दें।" इतना कहकर राणाजी रुक गये। मेवाड़ के सामन्तों में इन शब्दों से उत्तेजना फैल गई, और वे " भगवान एकलिङ्ग की जय, महाराणा जी की जय," कहते हुए अपनी सम्मति देने लगे। उन सब वीर सरदारों ने ऊंचे स्वर में कहा " राणाजी जब तक मेवाड़ में एक भी भील या राजपूत जीवित रहेगा तब तक यह लाल झंडा इसी शान से फहराता रहेगा।

वीर सरदारों के इस उत्साह को देखकर, प्रताप को बड़ी प्रसन्नता हुई, और उन्होंने शीघ्र ही युद्ध के लिये तैयारी करने की आज्ञा देदी। उदयपूर को छोड़कर बनों में रहने का प्रबन्ध किया गया, और, सारे व्यापारिक मार्ग बन्द कर दिये

गये। इन बातों से ज्ञात होता है कि प्रताप जैसे वीर थे, वैसे ही राजनीति के दाव पेचों के भी खूब जानकार थे। उन्होंने सोच लिया कि यदि युद्ध में मुग़ल विजयी भी होजांय तो उन्हें लूट-पाट करने तथा आनन्द से उदयपूर में रहने का अवसर तो न मिले।

देखते देखते उदयपुर वीरान होगया, और वीर भूमि मेवाड़ ने एक विशाल रण क्षेत्र का रूप धारण कर लिया। भील और राजपूत रण-यात्रा की तैयारियां करने लगे। उधर, मुग़ल सेना भी मेवाड़ में पहुँच चुकी थी। प्रताप भी अपनी सेना लेकर हल्दी घाटी में आ जमे। इस पवित्र भूमि पर मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिये जो युद्ध हुआ, वह संसार भर के इतिहास में अद्भुत है। मुट्ठी-भर भील और राजपूत उस विशाल मुग़ल सेना पर सिंह के समान लपके। महाराणा प्रताप भी अपने वीर घोड़े चेटक पर बैठे हुये बिजली के समान कभी इधर, कभी उधर पहुँच कर युद्ध करने लगे। कैसा भयंकर था वह युद्ध! मेवाड़ की स्वतंत्रता-देवी के मंदिर में बलिदान होने वाले पुत्रों के सामने भला मुग़ल सेना कितनी देर ठहर सकती थी! युद्ध के समय, प्रताप की दृष्टि मानसिंह पर पड़ी, और वे उन पर लपके। चेटक बिजली की भांति उछला और उसने अपने अगले दो पैर हाथी के मस्तक पर जमा दिये। प्रताप ने अपना

भाला हवा में उठाया और उसे मानसिंह की ओर लक्ष्य करके, चला दिया। मानसिंह के सामने अंधेरा सा छा-गया और वे भय के मारे हौदे में ही गिर पड़े। परन्तु भाग्य-वश राणाजी का भाला हौदे में लग कर रह गया। मान-सिंह को मरा जान कर प्रताप ने चेटक को नीचे कुदाया और युद्ध करने लगे।

इधर, मानसिंह बच कर निकल भागे। प्रताप उस समय अकेले मुग़ल सेना में घिर गये थे। असंख्य मुग़ल सेना उन पर टूट पड़ी, किन्तु महाराणा जिस उत्साह से युद्ध कर रहे थे, वह देखने ही योग्य था। कुछ दूरी पर वीरवर झाला मानसिंह युद्ध कर रहे थे, यकायक उनकी दृष्टि राणाजी पर पड़ी, सोचा कि कहीं मेवाड़ का यह अनमोल रत्न युद्ध भूमि में ही न रहजाय। बिजली की भांति मुग़ल सेना को चीरते हुये वीरवर झाला, महाराणा के पास पहुँच गये। देखते देखते उन्होंने महाराणा जी का झलमल टोप और छत्र उतार कर अपने सिर पर रख लिया और युद्ध करने लगे। राणाजी ने फिर भी वहां से न हटने की इच्छा प्रकट की; तब वीरवर झाला ने कहा, "राणाजी! मेवाड़ की स्व-तंत्रता के लिये आपको जीवित रहने की आवश्यकता है।" मुग़ल सेना झाला को ही राणा समझ कर, अब इन पर टूट पड़ी, और, राणाजी वहां से निकल गये। वीरवर झाला

वहीं लड़ते लड़ते वीर गति को प्राप्त हुये । धन्य हो झाला सरदार! तुम्हारे इस बलिदान की समता करने वाला दूसरा और कोई उदाहरण मिल सकेगा, इसमें सन्देह है। तभी तो आज भी तुम्हारे त्याग की चर्चा के समय, साधारण मनुष्य के हृदय में भी वीर भाव उत्पन्न होजाता है।

थोड़ी ही देर में शाही सेना में भगदड़ पड़ गई। महाराणाजी विजय का डंका बजाकर लौट ही रहे थे कि बालीचा गांव[1] के पास, उनका स्वामि भक्त घोड़ा चेटक गिर पड़ा और मर गया। राणा जी को चेटक के मरने का बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसी स्थान पर एक समाधि बनवाई जो आज तक मौजूद है। स्वतंत्रता के इस भीषण युद्ध में मेवाड़ के बहुत से रत्न काम आये। उनमें झाला वीर, तथा विदनौर[2] के राठौर रामदास (जयमल के पुत्र) की वीरता की प्रशंसा तो शत्रुओं ने भी की है। माता को स्वतन्त्र करने के लिये ऐसे ही उज्वल रत्नों के न्योछावर की आवश्यकता होती है।

हल्दी घाटी उदयपुर से लगभग तीस मील और नाथद्वारा[3]

---

[1]यह हल्दी घाटी के किनारे पर एक छोटा सा गांव है।

[2]यह मेवाड़ राज्य में एक छोटा सा राज्य है, जिसके स्वामी वीरवर जयमल के वंशज हैं।

[3]यह वल्लभी सम्प्रदाय का सबसे बड़ा मठ है और भारतवर्ष का बहुत बड़ा तीर्थ स्थान है। उदयपुर से वहां तक रेल जाती है।

से ग्यारह मील दक्षिण पश्चिम में है। गोगूदा* और नाथद्वारा के बीच में जो विकट श्रेणियां आगई हैं उन्हीं में एक तंग रास्ते वाली घाटी है; यहां की पहाड़ियां हल्दी के समान पीले रंग वाले पत्थर और मिट्टी से बनी हुई हैं, इसी लिये इसका नाम हल्दी घाटी पड़ा। इन पहाड़ियों के बीच में एक गोलाकार चौड़ा मैदान है। इस मैदान में खड़े होकर जिधर देखिये उधर ही हल्दी के समान पीली मिट्टी दिखाई देती है। इस मैदान में आने के लिये एक तंग रास्ता है। यही वह भूमि है जहां स्वतंत्रता देवी का अखंड पुजारी प्रताप शाही सेनाओं से जूझा था। इन पंक्तियों के लेखक को इस पवित्र भूमि की पैदल यात्रा करने का सौभाग्य हुआ है। उस भूमि पर खड़े होने से कैसी उमंग, कैसा उत्साह और हृदय में कैसी उथल पुथल मचती हैं! प्रत्येक भारतीय को इस पवित्र स्थान की तीर्थ यात्रा करनी चाहिये कुछ सालों से ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को इस स्थान पर एक मेला लगता है।

हल्दी घाटी के युद्ध के उपरान्त महाराणा प्रताप अपनी सेना सहित पहाड़ों में रहकर मुग़ल सेना से लड़ते रहे।

* यह मेवाड़ का एक बड़ा ठिकाना है; उदयपुर से लगभग २४ मील है। रास्ता पथरीला है।

उन दिनों मेवाड़ के उस बांके वीर ने क्या क्या कष्ट नहीं उठाये, महलों में निवास करने वाले राणाजी कभी सघन वनों में शिलाओं पर सोते दिखाई देते तो कभी गुफाओं में विश्राम लेते। मेवाड़ के राणा को रूखा-सूखा भोजन मिलना भी दुर्लभ होगया। वन के फल पत्तों और घास से ही वे अपनी भूख मिटाते। यह भोजन भी प्रत्येक दिन नहीं मिलता था, कभी कभी तो भोजन करते समय ही, शत्रुओं के आजाने से उसे, छोड़ कर युद्ध करना पड़ता। एक बार तो महाराणा जी को लगातार सात दिन तक इसी प्रकार भूखे रहना पड़ा। हम लोगों में कितने ऐसे हैं जो अपने कर्तव्य को पालन करने में इतने कष्ट झेल सकते हैं। हम लोग तो केवल व्याख्यान देकर, तथा लेख लिखकर ही यश कमाना चाहते हैं। यदि हममें से किसी के हृदय में मातृ-भूमि की सेवा का विचार हो तो उसे प्रताप के संयम और त्याग से शिक्षा लेनी चाहिये। मातृ-भूमि पर बलिदान होने वाले बहुत से पुत्रों के नाम इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं, परन्तु प्रताप तक कोई नहीं पहुंचता। जिस प्रकार और हिन्दू राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार करली थी और आनन्द से जीवन बिता रहे थे, उसी प्रकार प्रताप भी कर सकते थे। लेकिन प्रताप उन लोगों में से नहीं थे, जो विपत्ति को सामने देख कर घबरा जावें, वे तो विपत्ति को ललकारने वाले थे। प्रताप

अपने मान, और देश की स्वतंत्रता के मूल्य को समझते थे। तभी तो उन्होंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग बनों और पहाड़ों में रहकर युद्ध करते हुये बिताया, किन्तु मेवाड़ को दासता की बेड़ियों से न बंधने दिया। धन्य हो प्रताप! तुम स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाने वालों में सबसे ऊंचे हो, तुम्हारे इस पवित्र जीवन को याद करने से हमारी नसों में खून दौड़ने लगता है, और तुम्हारे सामने श्रद्धा और भक्ति से सिर झुक जाता है।

एक बार जब महाराणा प्रताप एक वन में विश्राम ले रहे थे, कुँवर अमरसिंह शाही सेना पर छापा मार कर सरदार मिर्ज़ाख़ां की बेगमों को पकड़ लाये। महाराणा जी ने उन्हें देखते ही कहा, अमरसिंह! जाओ, इनको शाही फ़ौज में इज़्ज़त के साथ पहुंचा आओ; राजपूत स्त्रियों से युद्ध नहीं करते। महाराणा का यह कार्य उज्वल चरित्र का एक सुन्दर उदाहरण है।

अकबर ने लगातार एक के बाद दूसरे सेनापतियों की अधीनता में सेना भेजी, लेकिन मेवाड़ के इस बांके वीर के सामने कोई कुछ न कर सका। अन्त में स्वयं अकबर एक बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया, किन्तु उसको भी लौटना पड़ा। जिस अकबर की प्रबल शक्ति के सामने उस समय भारतवर्ष का कोई बड़ा राजा भी नहीं ठहर सकता

था, उसी के सामने प्रताप मुट्ठी भर भीलों और राजपूतों को लेकर बीस वर्ष तक डटा रहा। अन्त में अकबर की सेना परास्त होगई। इसका कारण जानना चाहते हो? प्रताप और उसके देशभक्त सैनिक अपने प्राणों की भी परवाह न करके अपने देश को बचाने पर उतारू थे। जिस कार्य को मनुष्य तन, मन, धन से करता है, उसमें सफलता अवश्य मिलती है।

अन्त में स्वामिभक्त भामाशाह के द्वारा सहायता मिलने पर महाराणा ने एक बड़ी सेना लेकर, जितना मेवाड़ का प्रदेश छिन गया था, वह फिर जीत लिया। इसके अतिरिक्त मालवा, तथा जयपुर में धावे करके इन्होंने इन प्रदेशों में भी शाही सेना को हराया। महाराणा प्रताप के हृदय में तो देश-प्रेम का प्रबल प्रवाह बह रहा था; भला वे अकबर की अधीनता कैसे स्वीकार करते! यदि हिन्दू राजे मुग़ल साम्राज्य के सहायक बनकर प्रताप से न लड़ते तो महाराणा भारतवर्ष को फिर वीर बना देते। प्रताप केवल वीर सेनापति ही नहीं थे, वे राजनीति को भली भांति समझते थे। स्वतंत्रता देवी का एसा सच्चा उपासक संसार में बिरला ही होता है।

× × × ×

चावंड* नामक ग्राम में जब कुटी में पड़ा हुआ मेवाड़ का यह महापुरुष मृत्यु की वाट जोह रहा था, मेवाड़ के सारे सामंत उदास मुख वैठे हुये थे। राणा प्रताप को बड़ी बेचैनी हो रही थी। समीप ही वैठे हुये सालुम्बर× नरेश ने पूछा "राणाजी ! आपको इतनी व्यथा क्यों हो रही है ?" प्रताप ने आंखें खोलीं और कहा, "सालूम्बर नरेश ! जानना चाहते हो मुझे यह कष्ट क्यों होरहा है ? मुझे एक भय है, जो मेरे प्राणों को शान्ति-पूर्वक नहीं निकलने देता; अमर-सिंह का विलासी जीवन देख कर मुझे विश्वास हो गया है कि मेवाड़ की स्वतंत्रता वहुत समय तक न रह सकेगी। मेरी इस कुटिया के स्थान पर सुन्दर महल बनेंगे, मेवाड़ की बहु-मूल्य स्वतंत्रता, जिसके लिये मैं ने अपने वीर साथियों का रुधिर वहाया है, अमरसिंह के हाथों बेच दी जायगी । ऐ जननी जन्म भूमि ! तेरी स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिये मैंने बीस वर्ष तक जो युद्ध किया है, वह व्यर्थ जायगा ।" सालूम्बर नरेश बोले " राणाजी आप इसकी चिन्ता न करें, जब तक हम जीवित हैं, कुँवर साहब को तुर्कों की अधीनता स्वीकार न करने देंगे ।" सब सामंतों ने राणाजी के सामने यही शपथ ली । उस समय स्वतंत्रता देवी के उस भक्त

* यह उदयपुर से तीस मील दक्षिण एक पहाड़ी गांव है ।

× मेवाड़ में सबसे प्रतिष्ठित सरदार सालूम्बर नरेश ही है ।

का चेहरा प्रसन्न दिखाई देने लगा, और थोड़े ही देर में उनका प्राण पखेरु उड़ गया।

यह घटना हमें किस बात का ध्यान दिलाती है ? जो मनुष्य अपने देश की स्वतंत्रता के लिये बीस वर्ष तक युद्ध करता रहा हो और मृत्यु के समय भी जिसे उसीका ध्यान रहा हो, वह स्वतंत्रता देवी का अवतार नहीं तो क्या है ! जिस विपरीत स्थिति में प्रताप ने अकबर जैसे सम्राट की परवाह न करके मेवाड़ को स्वाधीन रक्खा, वह एक अनोखा उदाहरण है। राज महलों में पलने वाला यह नवयुवक गद्दी पर बैठते ही रण क्षेत्र की तैयारियां करता है। मरने के दिन तक उसका जीवन रणभूमि में ही व्यतीत होता है। जिन्होंने मेवाड़ को कभी देखा है वे जानते हैं कि यह कैसा बीहड़, तथा जंगलों और पहाड़ियों से भरा हुआ प्रदेश है। जो लोग आज मेवाड़ के निर्बल भीलों और राजपूतों को देखते हैं, उन्हें आश्चर्य होता है कि क्या यह लोग उन्हीं मेवाड़ियों की संतान हैं, जिन्होंने संसार के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखे जाने वाले कार्य किये थे।

बात यह है कि आज भी हम लोग वही हैं, जो हमारे पूर्वज थे; केवल एक बात की कमी है। आज हमारे हृदय अपने गौरव को सुरक्षित रखने के लिये लालायित नहीं हैं।

प्रताप ने इन्हीं मेवाड़ियों में जान फूंक दी थी। संसार में बड़े कार्य करने के लिये संयम, त्याग, और लगन चाहिये। जो अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिये अपने को बलिदान कर सकता है उसके सामने सब कठिनाइयां सहल होजाती हैं।

कुछ वर्षों से ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को भारतवर्ष में प्रताप जयन्ती मनाई जाने लगी है। हम लोगों को चाहिये कि इस दिन को हम अपना राष्ट्रीय त्यौहार बनालें जिससे हमारे हृदयों में शक्ति का संचार हो। भारतवर्ष में प्रताप जयन्ती का आयोजन करने वाले, श्री क्षेमानन्दजी राहत को स्वर्गीय महाराणा फतहसिंह ने वचन दिया था कि उदयपुर में शीघ्र ही महाराणा प्रताप का स्मारक बनवाया जायगा। किन्तु, इस कार्य के होने से पहले ही उनका स्वर्गवास होगया आशा है कि उनके पुत्र वर्तमान महाराणाजी अपने स्वर्गीय पिता की इच्छा पूरी करेंगे। पाठकों में से जब कोई उदयपुर जावे तो अन्य दर्शनीय स्थानों को देखने के अतिरिक्त, तीन चीज़ें अवश्य देखे। एक तो प्रताप का स्मारक, दूसरे हल्दी घाटी की रण-भूमि, तीसरे प्रताप का चावंड में समाधि स्थान। इन चीज़ों के देखने से कायर हृदय भी वीर बनता है।

महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में, मेवाड़ में, बहुत से गीत

गाये जाते हैं। * उनके गाने वालों के हृदय उत्साह से भर जाते हैं, वे वीर रस से उन्मत्त से हो जाते हैं। श्रोताओं पर भी इन गीतों का बड़ा प्रभाव पड़ता है, वे अपने दुख सुख, और अपनी आधुनिक परिस्थिति सम्बन्धी इतर बातों को भूल कर कुछ समय के लिये महाराणा के भावों और विचारों का आनन्द लेते हुए, उनमें तन्मय होजाते हैं। कौन कह सकता है कि महाराणा की स्मृति अनेक नर नारियों युवकों और वृद्धों में नवजीवन का संचार नहीं कर रही है।

---

* उदाहरण स्वरूप महाराणा के वंशज महाराज चतुरसिंह की कविता नीचे दी जाती है; इसमें प्रताप के चरित्र का कितना भावपूर्ण वर्णन है:—

राणा धीर धरम रखवाला, थूं रजवट रावट वाला ॥
वीर प्रताप रा पोता, जश रा जगत उजाला।
भला पालणों खड्ग खपाणों, चौंसठ घड़ी अपारा चाला ॥ राणा॰
हो दरियाव तेरा एक साथे, चेटक चढ़वा वाला।
खम्या क्रोड़ दुख, छोड़ सभी सुख, खम्या न खोट खवाला ॥ राणा॰
मेवाड़ा मेवाड़ वणाई, रजवट री पठशाला।
एड़ी ठौड़ न दियो अंगूठो, बढ़तो गयो बढाला ॥ राणा॰
खोटारी छाती में खटके, सात हाथ रो भाला।
एकलिङ्ग रे रिया आसरे, दिया दुश्मणा टाला ॥ राणा॰

(३)

छत्रपति शिवाजी

संसार में मनुष्य क्या नहीं कर सकता, केवल उसमें चरित्र-बल तथा बलिदान की भावना होनी चाहिये! हम में से प्रत्येक ने महाराज शिवाजी का नाम सुना ही होगा। परन्तु क्या हमें यह भी मालूम है कि वे यहां किस भयंकर समय में पैदा हुये। भारतवर्ष में उससे बुरे दिन और भी आ सकेंगे, इसमें सन्देह है। हिमालय की चोटी से लेकर दक्षिण तक मुग़ल साम्राज्य का विस्तार था। हां, बीजापूर और

गोलकुंडा की दक्षिणी रियासतें अवश्य स्वतंत्र थीं। ताजमहल के बनवाने वाले सम्राट शाहजहां मयूर-सिंहासन की शोभा बढ़ा रहे थे। हिन्दू जाति का घोर पतन हो चुका था। सरकारी पद, तथा शाही दरबार में सम्मान पाना ही उस समय प्रत्येक हिन्दु के जीवन का लक्ष्य था। हिन्दू धर्म पर महान् आपत्ति आई हुई थी। देश को इस गिरी दशा से ऊंचा उठाने वाला, उस समय कोई दिखाई नहीं देता था। ऐसे बुरे दिनों में वीरवर शिवाजी का महाराष्ट्र प्रान्त में जन्म हुआ। दक्षिण भारत के पश्चिम किनारे पर जो पहाड़ी प्रदेश है उसी का नाम महाराष्ट्र है। शिवाजी के पिता, शाहजी बीजापूर के निज़ामशाही राज्य के साधारण जागीरदार थे। वह जिस समय बीजापूर राज्य की सेनाओं को लेकर दिल्ली सम्राट से लड़ रहे थे, उन्हीं दिनों शिवाजी का जन्म शिवनेरी के क़िले में हुआ। इस बात को लगभग तीन सौ वर्ष हुये हैं।

शिवाजी का जन्म एक ऐसे घराने में हुआ था, जो विजेताओं की सेवा में ही अपना अहोभाग्य समझता था। केवल इनके पिता ही नहीं, वरन् और सब मराठे सरदार भी बीजापुर निज़ाम की कृपा-दृष्टि के लिये लालायित रहते थे। उस समय मराठे सरदार दासता में ही सुख मान बैठे थे, किसी के हृदय में भी हिन्दु रा य स्थापित करने की भावना

नहीं थी। उस दासता के युग में, इस वीर बालक के हृदय में स्वतंत्रता के भाव जागृत हुये। बालक शिवाजी के हृदय में इन भावों का संचार करने वाली उनकी वीर माता जीजाबाई ही थीं। जीजाबाई जैसी चतुर माता के कारण डूबते हुये देश को एक सहारा मिल गया। आज भारतवर्ष में मातृ शक्ति के निरादर को, तथा उनकी गिरी हुई दशा को देखते हुये शिवाजी जैसे रत्न उत्पन्न करने की आशा, दुराशा मात्र है।

जीजाबाई ने शिवाजी का लालन पालन बड़ी सावधानी से किया। उन्होंने उनके हृदय में स्वतन्त्रता के भाव जागृत किये। बड़े होने पर शिवाजी के हृदय में मराठा सरदारों की इस गिरी हुई दशा को देखकर दुःख होने लगा, उनको यह दासता अखरने लगी, किन्तु मराठा सरदारों में इतना स्वाभिमान भी शेष नहीं था कि वे उत्साहित किये जा सकते। शाहजी ने बहुत कुछ चाहा कि शिवाजी भी हमारी ही भांति बीजापूर दरबार का सेवक बने, किन्तु शिवाजी का जन्म चापलूसी करने के लिये नहीं हुआ था। वे तो महाराष्ट्र प्रान्त का स्वतंत्र राज्य स्थापित करने के लिये ही इस संसार में आये थे। एक बार जब शाहजी ने बहुत कुछ कहा सुना तो शिवाजी ने उत्तर दिया, "पिताजी! भले ही आपको विजातियों की सेवा करने में मान और प्रतिष्ठा दिखाई दे, किन्तु मुझे तो उसमें ऐसी कोई बात दिखलाई नहीं देती, जिसके

लिये हम अपनी स्वतंत्रता बेच दें।" शाहजी समझ गये कि शिवाजी को अपने मार्ग पर लाना कठिन है।

थोड़े दिनों के बाद शिवाजी अपने पिता की जागीर में आकर रहने लगे। वे उन लोगों में से नहीं थे, जो हृदय के भावों को हृदय में ही रक्खे रहें। यद्यपि समय को देखते एक स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करना स्वप्न के समान था, वह अपने पिता की जागीर में आकर अपने भावी कार्य की तैयारियां करने लगे। उन्होंने देखा कि मराठा जाति के नेतागण दासता में इतने जकड़े हुये हैं कि उनसे स्वराज्य स्थापना में सहायता नहीं मिल सकती। उन्हें ज्ञात हुआ कि निर्धन ग्राम निवासी किसानों में देश के लिये अधिक श्रद्धा और भक्ति है, बस उन्होंने मावली किसानों से अपना सम्बन्ध बढ़ाया। मावले वीर, तथा देशभक्त तो थे ही, उन्हें केवल एक चतुर नेता की आवश्यकता थी। जहां देखो, वहां निर्धन लोगों ने ही अधिक त्याग किया है। यदि प्रताप को भीलों और राजपूतों से सहायता मिली, यदि गुरु गोविन्द-सिंह ने अपने भक्त किसानों को लेकर औरंगज़ेब जैसे प्रबल सम्राट की शक्ति को निर्बल किया, तो शिवाजी ने मावली किसानों को लेकर मराठा साम्राज्य स्थापित किया।

सबसे पहिले शिवाजी ने वीर मावलों को लेकर आस पास के किले छीन लिये। शिवाजी के इस कार्य की चर्चा

महाराष्ट्र भर में फैल गई, और देश-प्रेम से भरे हुये नवयुवक शिवाजी के झंडे के नीचे आने लगे। धीरे धीरे शिवाजी ने कुछ और भी क़िले ले लिये। यह समाचार जब बीजापुर पहुंचा तो निज़ामशाही सरकार चौकन्नी हुई। बीजापुर की गद्दी पर उस समय आदिलशाह विराजमान थे, उन्होंने शाहजी को बंदी कर लिया और उन्हें प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी। शाहजी ने अपनी दुर्दशा का पत्र शिवाजी को लिखा। इस समय शिवाजी बड़ी दुविधा में पड़े, एक ओर स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करने की अभिलाषा थी, दूसरी ओर पिता का संकट था।

शिवाजी ने उस समय चतुराई से काम लिया; वे थोड़े दिनों के लिये बिलकुल चुप हो गये, और इस प्रकार अपने पिता का छुटकारा करा लिया। इस बीच में उन्होंने अपने सैनिक बल को और भी बढ़ा लिया। शिवाजी वीरों का आदर करना भी खूब जानते थे। इसी एक गुण के कारण, बहुत से वीर नवयुवक इनके झंडे के नीचे आकर इकट्ठे हो गये। राजा होते हुये भी शिवाजी का जीवन बहुत सादा और कठोर था, तभी तो वे इतना बड़ा काम कर सके। आराम से रहने वाले संसार में कभी कोई बड़ा काम नहीं कर पाते।

शिवाजी का चरित्र भी कम प्रशंसनीय नहीं था। जहां

अब बम्बई है, उसके निकट, कल्याण के युद्ध में आबाजी सोनदेव ने वहां के सूबेदार के लडके की स्त्री को पकड लिया, उस स्त्री की सुन्दरता को देखकर, वे उसे शिवाजी के पास लाये। शिवाजी का दरबार लगा हुआ था, उस सुन्दरी की अपूर्व सुन्दरता को देखकर सब लोग दंग थे। शिवाजी ने उसको देखते ही कहा "वाह, कैसा सुन्दर रूप है, यदि मेरी माता भी इतनी ही सुन्दर होतीं तो मैं भी रूपवान होता।" फिर शिवाजी ने उस रमणी को आभूषण और वस्त्र भेंट करके आदर सहित घर भेज दिया। शिवाजी के इस कार्य से उनके चरित्र की उज्ज्वलता स्पष्ट दिखलाई देती है। संसार में यदि हम बड़े काम करना चाहते हैं तो हमें अपना चरित्र ऊंचा बनाना चाहिये। शिवाजी का जीवन हमें यही शिक्षा देता है।

शाहजी के छूटने के बाद, शिवाजी ने फिर युद्ध छेड़ दिया। तंग आकर बीजापुर दरबार ने अफ़ज़लखां को सेनापति बनाकर, उसके अधीन एक बहुत बड़ी सेना शिवाजी के बल को नष्ट कर देने के लिये भेजी। शिवाजी जानते थे कि अफ़ज़लखां जैसे वीर सेनापति की इतनी बड़ी सेना का सामना करने की शक्ति उनके पास नहीं है। परन्तु इस भयंकर विपत्ति के समय भी वे विचलित नहीं हुये और

इसे टालने की युक्तियां सोचने लगे। विपत्ति के आने पर जो लोग घबरा जाते हैं, वे कभी बड़े काम नहीं कर सकते। भयंकर विपत्ति के समय भी जो धैर्य को नहीं छोड़ता, वही संसार मे सफलता प्राप्त करता है।

शिवाजी ने अफ़ज़लख़ां से मिलने की इच्छा प्रकट की; अफ़ज़लख़ां ने भी मिलना स्वीकार कर लिया। एक पहाड़ी स्थान पर दोनों के मिलने का प्रबन्ध किया गया। शिवाजी ने उस पहाड़ी के समीप ही अपनी सेना छिपा दी, और कुछ सेना बीजापुरी सेना के पीछे रख दी। यह कर चुकने के बाद, उन्होंने अपने सरदारों को बुलाकर समझाया, "यदि मैं मारा जाऊं तो सम्भाजी* को सिंहासन पर बिठा कर राज्य संभालना।" इससे छुट्टी पाकर वे अफ़ज़लख़ां से मिलने चले।

अफ़ज़लख़ां अपने दो साथियों सहित वहां पहुँचे। ख़ां बहुत बलिष्ठ था, उसकी कमर से एक लम्बी तलवार लटक रही थी। शिवाजी के पास दिखावे में तो कोई हथियार न था परन्तु वे बघनखा, और 'बिच्छू' अस्त्र कपड़ों में छिपाये हुये थे। अफ़ज़लख़ां ने सोचा कि शिवाजी के पास कोई हथियार नहीं है, उन्हें पकड़ने का यह अवसर ठीक है। उसने उन्हें ताना देते हुये कहा, तुम जैसे ग़रीब किसान के पास

* शिवाजी के पुत्र

ऐसा क़ीमती शामियाना* कहां से आया। इस पर शिवाजी ने क्रोधित होकर उत्तर दिया, यह काम हम राजपूतों का है, न कि तुम जैसे भटियारों का। बस, खां ने शिवाजी को पकड़, उनके शरीर में तलवार घुसेड़ने की चेष्टा की; किन्तु शिवाजी कवच पहिने थे, इस कारण बच गये। शिवाजी ने अपना बघनखा खां की बग़ल में घुसेड़ दिया और खां को मार डाला। मराठों की सेना उसी समय बीज़ापुर की सेना पर टूट पड़ी, थोड़ी सी देर में ही बीजापुर की सेना भाग खड़ी हुई। शिवाजी की यह विजय अद्भुत थी, सारा महाराष्ट्र आनन्द में मग्न हो उठा।

आदिलशाह ने जब यह समाचार सुना तो उसको बड़ी चिन्ता हुई। उसने सिद्दी जौहर नामक एक हब्शी सरदार को एक बहुत बड़ी सेना देकर भेजा। सिद्दी जौहर ने शिवाजी को एक क़िले में घेर लिया। शिवाजी ने देखा कि अब बचना कठिन है, उन्होंने सन्धि करने के लिये कहला भेजा। दिन भर सन्धि की चर्चा होती रही और रात्रि में जब बीजापुर की सेना विजय के आनन्द में मस्त होकर सो रही थी, उस समय शिवाजी ने अपनी सेना लेकर विशालगढ़ नामक दुर्ग की ओर कूच कर दिया, किन्तु इतनी बड़ी सेना

* जहां अफज़ल खां शिवाजी से मिला था, वहां एक क़ीमती शामियाना लगाया गया था।

का चुप चाप निकल जाना सम्भव नहीं था । शिवाजी की सेना थोड़ी ही दूर गई होगी कि बीजापुर की सेना को खबर लग गयी। सिद्दी जौहर ने सेना समेत उनका पीछा किया। यद्यपि उस पहाड़ी प्रदेश में मराठे बहुत तेज़ी से चल रहे थे, परन्तु बीजापुर की सेना उन तक पहुँच ही गई। उस समय बड़ी भयंकर विपत्ति का सामना था। थोड़े से मराठे वीर उस विशाल शत्रु-सेना का सामना कैसे कर सकेंगे! उस समय शिवाजी के वीर सेनापति बाजी प्रभु ने कहा, आप तो क़िले की ओर बढ़िये और मैं शत्रुओं को रोकता हूं। पहिले तो शिवाजी ने यह बात न मानी, परन्तु बहुत कुछ आग्रह करने पर वे सहमत होगये। बाजी प्रभु ने चलते समय शिवाजी से कह दिया कि क़िले पर पहुँच कर तोप चलवा दें। अब बाजी, प्रभु अपनी थोड़ी सी सेना को लेकर शत्रु की ओर मुँह करके खड़े होगये। उन्होंने ऊंचे स्वर से कहना आरम्भ किया, "वीरो! देश को स्वतंत्र बनाने वाले महाराज शिवाजी इस समय विपत्ति में फंसे हैं। उन्हें अपने जीवन की तो तनिक भी चिंता नहीं है, परन्तु उनके न रहने से महाराष्ट्र प्रदेश को स्वतंत्र राज्य बनाने का काम पूरा न हो सकेगा। आओ हम, लोग महाराष्ट्र देश की स्वतंत्रता के पुजारी और अपने स्वामी को बचाने के लिये प्राणों की बाज़ी लगा कर युद्ध करें, जिससे मुसलमान

सेना वहां तक न पहुंच सके।" तब तक बीजापुर की सेना भी समीप आगई थी, मराठे वीर जोश में भरे हुये उन पर टूट पड़े। बड़ा ही भयंकर था वह युद्ध ! थोड़े से मराठे वीर अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर शत्रुओं को रोके हुये थे। बाजी प्रभु की वीरता अद्भुत थी, जिस ओर इन्हें मराठे दबते हुए दिखाई देते, उधर ही वे सिंह के समान झपट कर शत्रुओं को काट गिराते। वे ऐसा भीषण युद्ध कर रहे थे कि शत्रुओं को तो वे काल के समान दिखायी देने लगे। समुद्र के समान उमड़ती हुई सेना को बाजी प्रभु ने तिल-भर भी आगे न बढ़ने दिया। किन्तु अकेला वीर कहां तक खड़ा रह सकता था ! छाती में गोली लग जाने से वे गिर गये। लेकिन धन्य है, वीर बाजी प्रभु ! गिर कर भी वह सेना को उत्साहित करते रहे। विशालगढ़ के दुर्ग से तोप छूटने की आवाज़ हुई तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, और उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये। ऐसे ही वीरों के नाम दुनिया में अमर होते हैं।

जब बीजापूर दरबार ने देखा कि शिवाजी को जीतना कोई हंसी खेल नहीं है तो उन्होंने शाहजी को अपना दूत बनाकर सन्धि करने के लिये भेजा। शिवाजी ने अपने पिता का बहुत आदर किया, और उनके कहने से बीजापूर दरबार से सन्धि भी करली।

जब शिवाजी ने देखा कि उन्हें बीजापुर की ओर से कोई भय नहीं है तो उन्होंने अपनी दृष्टि मुग़ल साम्राज्य की ओर फेरी। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर औरंगज़ेब विराजमान था। शिवाजी ने मुग़ल राज्य के बहुत से किले अपने अधिकार में कर लिये। जब यह समाचार औरंगज़ेब को ज्ञात हुआ तो उसने एक बहुत बड़ी सेना नवाब शायस्ता खां के साथ भेजा। शायस्ताखां ने उस विशाल सेना को लेकर महाराष्ट्र प्रान्त पर आक्रमण कर दिया। वे अपने दलबल सहित पूना में आकर ठहरे। शिवाजी जानते थे कि वे मराठों की समस्त शक्ति को इकट्ठा करके भी शायस्ता खां से युद्ध नहीं कर सकते। किन्तु मराठा साम्राज्य को स्थापित करने के लिये यह आवश्यक था कि मुग़लों से लोहा लिया जाय। ऐसे कठिन समय में भी वीरवर शिवाजी घबड़ाये नहीं, अपनी जान को जोखिम में डालकर, थोड़े से मराठों को लेकर एक बारात के रूप में, पूना के अन्दर प्रवेश कर गये। कैसे साहस का काम था! यदि किसी को तनिक भी सन्देह होजाता तो क्षणभर में शिवाजी और उनके वीर सैनिकों को मार डाला जाता। वीर लोग हथेली पर जान रखकर इसी प्रकार काम करते हैं। रात्रि का समय होगया, शिवाजी ने महलों में घुसकर मार काट मचा दी। शायस्ता खां के कमरे में शिवाजी घुस गये। युद्ध होरहा था। बहुत से

मुग़ल सैनिक मारे गये। शायस्ताखां जाग गया और युद्ध करते करते उसका अँगूठा कट गया। शिवाजी ने समझा कि शायस्ताखां मारा गया, उन्होंने अपने साथियों को इकट्ठा किया और एक ओर निकल गये। मुसलमान सैनिक इतने घबरा गये थे कि वे शिवाजी का पीछा न कर सके।

जब औरंगज़ेब को इन सब बातों का पता लगा तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा, और उसने जयपूर महाराज की अधीनता में एक बहुत बड़ी सेना भेजी। जयसिंह जानते थे कि शिवाजी को परास्त करना हंसी खेल नहीं है। भला, जो देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ रहा हो, उसको जयसिंह क्या परास्त कर सकते थे। जयसिंह बहुत ही चतुर थे। उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये किसी प्रकार शिवाजी को फ़ुसला कर औरंगज़ेब से सन्धि कर लेने पर राज़ी कर कर लिया। हतभाग्य भारतवर्ष! तेरे पुत्रों ने तेरी दासता की बेड़ियों को दृढ़ करने में ही अपना गौरव माना, नहीं तो ऐसा दुर्दिन तुझे क्यों देखना पड़ता। होना तो यह चाहिये था कि महाराजा जयसिंह शिवाजी को स्वतंत्र साम्राज्य स्थापित करने के लिये उत्साहित करते, किन्तु जयसिंह में यह भाव कहां से आ सकते थे, वे तो सम्राट की सेवा करने में ही गौरव मानते थे। जयसिंह ने शिवाजी को यह सुझाया कि तुम औरंगज़ेब से सन्धि करलो, नहीं तो, उससे लड़ने में,

तुम्हारी भयंकर हानि होगी। शिवाजी ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि यदि वे अपने राज्य के स्वतंत्र शासक मान लिये जावेंगे, तो वे मुग़ल राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। दोनों ओर से सन्धि की बातें ठीक होजाने पर शिवाजी औरंगज़ेब से मिलने, आगरे की ओर, चल दिये।

औरंगज़ेब बहुत ही चतुर था। उसने अपने सूबेदारों को आज्ञा दे दी कि शिवाजी को रास्ते में कोई कष्ट न होने पावे, और जहां जहां वे रुकें, वहां उनका यथोचित आदर सम्मान किया जावे। जब शिवाजी आगरे पहुंचे तो उनको एक अच्छे स्थान पर ठहराया गया। दूसरे दिन शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में पहुंचे। औरंगज़ेब ने शिवाजी को साधारण सरदारों में खड़े होने की आज्ञा दी। स्वाभिमानी शिवाजी को भला अपना यह अपमान कैसे सहन होता ! उनके क्रोध का ठिकाना न रहा, आवेश में आकर वे न जानें, क्या क्या कहगये। नेत्रों से अग्नि वर्षा सी हो रही थी, सहसा उन्होंने अपना हाथ कमर पर डाला, किन्तु अभाग्य वश वे उस दिन तलवार बांधकर नहीं आये थे। यदि उस दिन शिवाजी की कमर में तलवार होती, तो जो दृश्य देखने में आता,, वह अनोखा होता। शिवाजी अपना वस न चलता देखकर, आज्ञा के विरुद्ध दरबार में बैठ गये। शिवाजी के इस कार्य से दरबार में सनसनी सी फैल गई। जयसिंह के पुत्र रामसिंह ने किसी

प्रकार शिवाजी को समझाया और दरबार से उन्हें घर ले गये।

शिवाजी को अब मालूम हुआ कि उन्होंने आगरे आकर भयंकर भूल की, परन्तु फिर भी घबराये नहीं। जो लोग विपत्ति पड़ने पर साहस-हीन होजाते हैं, वे कभी उस से छुटकारा नहीं पा सकते। औरंगज़ेब ने शिवाजी के मकान पर कठिन पहरा बिठा दिया। अब, उन्हें इधर उधर जाने की स्वतंत्रता न रही। शिवाजी को यह मालुम ही होगया कि औरंगज़ेब अब उन्हें दक्षिण की ओर न जाने देगा। इस पर, उन्होंने भी युक्ति से काम लिया। उन्होंने अपने सब सरदारों और सेना को वापिस भेज दिया, केवल वे और उनके पुत्र शम्भाजी, तथा दो मराठा वीर, रह गये। कुछ समय पश्चात् शिवाजी ने ब्राह्मणों को भोजन करवाना और उमरावों के यहां मिठाई भिजवाना प्रारम्भ किया। कुछ ही दिनों में उन्होंने सब उमरावों से मित्रता कर ली। बड़े बड़े सरदार उनके मकान पर आने जाने लगे। जब अब शिवाजी उन लोगों से मिलते तो कहते कि सम्राट ने मेरे रहने का इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया है कि अब मैं दक्षिण जाना नहीं चाहता। धीरे धीरे लोगों को शिवाजी की बातों पर विश्वास होने लगा। थोड़े दिन बाद शिवाजी ने लोगों से मिलना बन्द कर दिया, और यह बात फैलाई कि मैं बीमार हूं। फ़क़ीरों

और ब्राह्मणों को बांटने के लिये मिठाई, दिन में कई कई बार, जाने लगी। पहरेदार पहिले तो टोकरों को देखते थे, किन्तु अब वे उनको यों ही जाने देते। एक दिन शिवाजी अपने पुत्र सहित दो टोकरों में बैठ कर आगरे के बाहर निकल गये। एक मराठा सरदार जो शिवाजी के साथ था, वह भी यह कह कर कि शिवाजी बीमार हैं, मैं उनके लिये वैद्य को बुलाने जाता हूं, बाहर हो गये।

प्रात:काल तमाम शहर में यह समाचार फैल गया कि शिवाजी निकल गये। औरंगज़ेब को जब यह मालूम हुआ तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा, सब सड़कों के नाके बन्द करवा दिये गये; बहुत कुछ खोज हुई, परन्तु सब निष्फल रही। शिवाजी भेष बदल कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर होते हुए दक्षिण पहुंच गये। इस यात्रा में शिवाजी को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, वह तो केवल अनुमान की जा सकती हैं। मुग़ल साम्राज्य में से निकल कर, मुग़ल सैनिकों की आंख बचाते हुए, सकुशल दक्षिण में पहुँचना बड़े साहस का काम था। परन्तु, शिवाजी उन लोगों में से थे, जिनका साहस विपत्ति के समय और भी बढ़ जाता है।

दक्षिण पहुंचते ही शिवाजी ने फिर मुग़ल साम्राज्य

पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उस समय शिवाजी की धाक सारे दक्षिण भारत में फैल गई थी। दक्षिण के स्वतन्त्र राज्यों को, उन्होंने अपने अधीन कर लिया, और उन से कर वसूल करने लगे। अन्त में, शिवाजी ने बड़े समारोह से अपना राज-तिलक करवाया।

एक बार महाराज शिवाजी की माता जीजाबाई ने अपने महलों से प्रसिद्ध सिंहगढ़ का बुर्ज देखा। नौकरों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह दक्षिण में सब से मज़बूत क़िला है। सह्याद्रय पर्वत मालाओं के ऊपर, महाराष्ट्र साम्राज्य की सीमा पर वह महत्वपूर्ण दुर्ग मुग़लों की अधीनता में रह जाय, यह जीजाबाई कैसे देख सकती थीं! दुर्ग को देखते ही, उन्होंने शिवाजी को बुला भेजा। शिवाजी के आते पर जीज़ाबाई ने कहा "पुत्र! सिंहगढ़ मेरे लिये विजय करो।" शिवाजी बड़े असमंजस में पड़े, वे जानते थे कि सिंहगढ़ को विजय करना मानों मृत्यु से खेलना है। एक तो सिंहगढ़ पर किसी भी ओर से आक्रमण नहीं हो सकता था, दूसरे वीरवर उदयभानु उस दुर्ग का रक्षक था। फिर भी, अपनी पूज्य माता की इच्छा पूरी करने के लिये, उन्होंने अपने सब सरदारों को बुलाकर कहा, "मेरी माता की इच्छा है कि सिंहगढ़ को विजय किया जावे। आप लोगों में से कौन इस कार्य के लिये अग्रगम?" सब

सरदारों में सन्नाटा सा छा गया, कोई भी बोलने का साहस न कर सका। सबको चुप देख कर शिवाजी ने आवेश में कहा, " अच्छा समझ गया, आप में से किसी में भी इतना साहस नहीं है कि सिंहगढ़ को विजय कर सके, अब आप लोग जाइये; मैं उस वीर को जानता हूं जो इस काम को करेगा।" इतना कहने के बाद शिवाजी ने एक पत्र वीरवर तानाजी के पास भेजा। पत्र में लिखा था, सिंहगढ़ विजय करना होगा, सेना सहित शीघ्र ही यहां आओ।

जब पत्र तानाजी के पास पहुँचा उस समय तानाजी के पुत्र का विवाह होने वाला था। कुटुम्बियों ने बहुत कुछ मना किया, किन्तु वीरवर ताना जी कब रुक सकते थे! इन्होंने केवल यही कहा " आप लोगों का यही तो कहना है कि सिंहगढ़ विजय करना मानों मृत्यु पर खेलना है, परन्तु इस बुढ़ापे में रोगी होकर मरने की अपेक्षा, देश के लिये लड़ते लड़ते गौरव के साथ मरना कहीं अच्छा है।" यह कह कर, अपने बारह हज़ार मावली किसानों को लेकर, तानाजी चल पड़े।

रात्रि का समय था। पहाड़ियों की घाटी में तानाजी की सेना धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। सिंहगढ़ की दीवार के समीप पहुंचने पर, तानाजी उस पर रस्सी

के सहारे, चढ़ने लगे । और, उनकी आज्ञानुसार वीर मराठे अपनी अपनी तलवारों को मुँह में दाब कर, उनके पीछे पीछे चढ़ने लगे। थोड़ी ही सेना ऊपर चढ़ पाई थी कि रस्सी टूट गई । तानाजी समझ गये कि इस रस्सी के साथ ही हमारे जीवन की आशा भी टूट गई। फिर भी वे हताश नहीं हुए। दोनों हाथों में तलवार लेकर वे किले में कूद पड़े। भीषण युद्ध होने लगा। बूढ़े तानाजी ने बहुत से सैनिकों को मार गिराया। जब उदयभानु को यह समाचार मिला तो उसने अपने एक सेनापति को लड़ने के लिये भेजा। बहुत से मतवाले हाथियों को लेकर वह लड़ने पहुंचा। हाथी मराठों को कुचलने लगे, किन्तु तानाजी के शरीर में तो मानों बिजली दौड़ रही थी। उनकी तलवार के सामने कोई बचता ही नहीं था। थोड़ी ही देर में तानाजी ने बहुत सी सेना को मार गिराया।

जब उदयभानु को यह ज्ञात हुआ कि उसकी सेना काम आगई तो वह वीर स्वयं युद्ध करने के लिये आया। उदयभानु से भी तानाजी का भयंकर युद्ध हुआ, परन्तु थोड़े से मराठे कहां तक युद्ध करते। उदयभानु से युद्ध करते हुये वीरवर तानाजी खेत आये। अब तो मराठों का उत्साह मन्द पड़ गया, और वे हटने लगे। इस पर एक वीर ने ऊंचे स्वर में कहा "कायरो! जाओ, भाग जाओ, अपने वीर

सेनापति को अपने सामने मरवा कर, पराजय का कलंक लेकर शिवाजी के सामने कैसे जाओगे!" मराठों में एक बार फिर उत्साह की लहर आई, और वे भयंकर युद्ध करने लगे। दुर्ग की सेना भाग खड़ी हुई। सिंहगढ़ के विशाल दुर्ग पर भगवा झण्डा फहराने लगा।

प्रातःकाल हो गया था। मराठे वीर उदास मुख महाराज शिवाजी को आता देख खड़े हो गये। शिवाजी बढ़ते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहां मावले वीर अपने सेनापति की मृत देह घेरे खड़े थे। शिवाजी ने वीरवर तानाजी के शव को देखकर सहसा कहा "गढ़ ऐले पण सिंह गैले" (अर्थात् गढ़ तो विजय कर लिया, परन्तु तानाजी जैसे सिंह को खो दिया)। वास्तव में तानाजी सिंह ही थे, नहीं तो क्या सिंहगढ़ को विजय करना कोई साधारण कार्य था! ऐसे ही वीर सहायकों के बल पर छत्रपति शिवाजी ने मराठा साम्राज्य की स्थापना की थी।

शिवाजी के हृदय में स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापित करने की भावना तो थी ही, किन्तु उनके गुरु समर्थ रामदास ने उनके हृदय में इस भावना को और भी जागृत किया। शिवाजी अपने साम्राज्य को अपने गुरु का ही मानते थे। यही कारण था कि मराठा राज्य का झण्डा भगवा रंग का था। शिवाजी के जीवन पर गुरु रामदास का अमिट प्रभाव

पड़ा। तभी तो, उन्होंने अपने जीवन में किसी पर अत्याचार नहीं किया। मुसलमानों से लगातार युद्ध करते रहने पर भी, उन्होंने मुसलमान स्त्रियों पर कभी हाथ नहीं डाला; और, न अपने राज्य में मसजिदों को नष्ट किया। यह उनके उदार-हृदय होने का सुन्दर प्रमाण है।

शिवाजी ने जिस वीरता तथा चतुरता से इतना बड़ा स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया, उसी चतुरता से उन्होंने राज्य का कार्य भी संभाला। शिवाजी की स्वतन्त्र साम्राज्य स्थापित करने की अभिलाषा पूरी हुई, और उसके कारण मुग़ल साम्राज्य की जड़ हिल गई। शिवाजी जैसे साधारण श्रेणी का मनुष्य इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करले, यह आश्चर्य-जनक बात दिखलाई देती है। परन्तु संसार में वे मनुष्य बड़े कार्य किया ही करते हैं, जिन्होंने त्याग और संयम का पाठ पढ़ा है। जब तक कोई अपने जीवन को ऊंचा नहीं बनाता तब तक वह कोई बड़ा कार्य कर भी नहीं सकता। शिवाजी का जीवन प्रत्येक मनुष्य को उत्साहित करने वाला है। जिस महाराष्ट्र केसरी ने मराठों को मुग़ल साम्राज्य की दासता से निकाल कर स्वतन्त्र कर दिया, जिसने स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना की, उसका जीवन हमारे मृतक शरीर में जीवन संचार करने वाला क्यों न हो!

कुछ वर्षों से देश भर में इस अनोखे वीर की जयन्ती मनाई जाने लगी है। वैषाख सुदी तीज इस वीरवर का जयन्ती दिवस है। उस दिन हमें इस वीर के जीवन पर दृष्टि डालने का अवसर मिलता है। पूना में, छत्रपति शिवाजी की, एक घोड़े पर सवार, मूर्ति स्थापित की गयी है। बच्चों के हृदय में यदि देश पर मर मिटने की भावना पैदा करनी हो तो महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरू गोविन्द सिंह, और छत्रसाल जैसे स्वतंत्रता के पुजारियों की पूजा का आयोजन करना होगा। यदि पाठकों में से कोई पूना जावें तो शिवाजी के स्मारक के दर्शन अवश्य करें। वहां जाने से हृदय में साहस तथा वीर भावों का संचार होता है।

---

(४)

महाराजा छत्रसाल

बुन्देलखण्ड का नाम तो भारतवर्ष का बच्चा बच्चा जानता है। संयुक्तप्रान्त के दक्षिण में, और मध्यप्रान्त के उत्तर में जो प्रदेश हैं, यही तो बुंदेले राजपूतों की भूमि है। बरसात के दिनों में गांवों की चौपालों पर बैठकर कभी आल्हखण्ड तो सुना ही होगा। उसके नायक आल्हा और ऊदल की यह मातृ भूमि है। बुन्देलखण्ड की भूमि पथरीली,

झाड़ और बीहड़ वनों से भरी हुई, रास्ते कठिन, रेलों का नाम नहीं, पैदावार यहां की जौ और मक्का ! प्रयाग, काशी, और आगरा जैसे सुन्दर स्थानों का यहां अभाव ! फिर क्यों यह प्रदेश इतना प्रसिद्ध है ? यह प्रश्न पाठकों के हृदय में उठता होगा, लेकिन बुन्देले राजपूत अपनी जाति की आन और बुन्देलखण्ड की शान को रखना जानते थे। इसी से हम उन्हें श्रद्धा और भक्ति से याद करते हैं। इसी बुन्देलखण्ड में महोबा नाम का एक गांव है।

लगभग तीन सौ वर्ष हुये, भारतवर्ष में मुसलमानों का राज्य था। सम्राट औरंगज़ेब दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान थे। उन दिनों महोबा की जागीर के मालिक चम्पतरायजी थे। जिन्होंने इतिहास पढ़ा है, वे जानते हैं कि औरंगज़ेब यह चाहता था कि समस्त भारतवर्ष उसके अधिकार में आजाय। इस इच्छा को पूरा करने के लिये उसने बहुत से राज्यों पर चढ़ाइयां कीं। लेकिन वाहरे बुंदेलो, मेवाड़ियो, मराठो, और सिक्खो ! तुमने औरंगज़ेब जैसे प्रतापी सम्राट के छक्के छुड़ा दिये और दिखा दिया कि तुम अधीन रहने से, मरना अच्छा समझते हो। औरंगज़ेब वर्षों लड़ता रहा। सारा भारतवर्ष उसके अधीन होगया, किन्तु यह चार जातियां अधीन न हुईं। बुन्देलखण्ड में स्वतंत्रता का डंका बजाने वाले, और अनेक कष्ट सहकर भी औरंगज़ेब से लोहा लेने

वाले, वीरवर चम्पतराय ही महोबा गांव के थे। चम्पतरायजी ने अपना सब जीवन शाही फ़ौजों से लड़ने में व्यतीत किया। छत्रसाल उन्हीं चम्पतराय जी के पुत्र थे। छोटेपन से उन्हें भी अपने पिता के साथ रणभूमि में रहना पड़ता था। वे देखते थे कि उनके पिता की केवल एक ही धुन है, वह है, बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र देखने की। राजा होकर भी उन्होंने कष्ट सहे, एक स्थान से दूसरे स्थान को भागते रहे, किन्तु स्वाधीनता को छोड़ना स्वीकार नहीं किया।

युवक छत्रसाल के हृदय में अपनी मातृ-भूमि के प्रति प्रेम था। अपने माता पिता के कार्यों को देखकर उन्हें भी उसको स्वतंत्र करने की लगन लगी। बुन्देलखण्ड के अन्य राजा औरंगजेब की गुलामी स्वीकार कर चुके थे; कोई भी चम्पतराय जी का साथ नहीं दे रहा था। इसी प्रकार शाही सेना से लड़ते लड़ते वीरवर चम्पतरायजी मारे गये। युवक छत्रसाल अब संसार में अकेला था, कोई भी उसका मित्र न था। वह तो सम्राट से लड़ने वाला था; भला, उसकी मदद कौन करता! लेकिन वह उन नौजवान लड़कों में से नहीं था, जो विपत्तियों से घबरा जाते हैं। उसके कानों में तो पिता के वे शब्द गूंज रहे थे "बेटा! महोबा राजघराने की आन को अपनी जान देकर भी निभाना।" फिर, छत्रसाल चुप कैसे बैठ सकता था! उसने

सोचा कि इस बड़े काम को करने से पहिले किसी ऐसे योग्य आदमी से सलाह लेना चाहिये, जो स्वतंत्रता का महत्व जानता हो, और उसकी प्राप्ति में लगा हो। छत्रसाल की दृष्टि छत्रपति शिवाजी पर पड़ी।

मराठों को औरंगज़ेब की अधीनता से निकालने वाले, सम्राट औरंगज़ेब को बहुत युद्धों में हराने वाले, और अपने बल से इतना बड़ा राज्य पैदा करने वाले, महाराज शिवाजी को कौन नहीं जानता ! बस, युवक छत्रसाल उन्हीं को गुरु मान कर बुन्देलखण्ड से पूना की ओर चल दिया। उन दिनों दूर की यात्रा इतनी सरल नहीं थीं। रेलों को भारतवर्ष में ही क्या, इंग्लैंड में भी कोई नहीं जानता था। सड़कें भी बहुत कम और खराब थीं, फिर बन और पहाड़ों से भरे हुए बुन्देलखण्ड, मध्य भारत, तथा मालवा प्रान्त को पार करके, नौ सौ मील से अधिक की यात्रा करना उस समय कितना कठिन था ! पथरीले रास्तों पर चलना, चोर डाकुओं का डर ! तिस पर भी सत्रह साल का वह युवक इस बड़ी यात्रा के लिये चल पड़ा। वीर छत्रसाल को इन कठिनाइयों की कुछ भी परवाह न थी। उसको तो एक ही धुन थी। वह थी, बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र करने की। हममें से कितने ऐसे हैं जो अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिये इतना कष्ट उठा सकते हैं ? बात यह है कि हम लोगों में

किसी बात की सच्ची लगन नहीं होती। इसी कारण थोड़ी सी भी कठिनाई आने से हम उसे छोड़ देते हैं। ऐसा मनुष्य दुनियां में कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता। जो कष्टों की परवाह नहीं करता, और विपत्तियों के आने पर भी अपनी धुन में लगा रहता है, वही दुनियां में बड़े काम कर सकता है। छत्रसाल भी सब कष्टों को झेलते हुए, और मुसलमानी सेना की आंख से बचते हुए, कुछ महीनों में वह लम्बी यात्रा समाप्त करके सिंहगढ़* पहुंचे, और शिवाजी से मिले।

इन्हे देखते ही महाराज शिवाजी को यह समझने में देर न लगी कि यह युवक बुन्देलखण्ड का भावी रत्न है, और बुन्देलखण्ड शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा। उन्होंने छत्रसाल की बड़ी आव-भगत की, और उन्हें गले लगाया। थोड़े दिनों तक छत्रसाल शिवाजी के मेहमान रहे। शिवाजी ने उन्हें बहुत सी बातें समझायीं।

उन्होंने कहा "भाई बुन्देलखण्ड में जितने भी राजा और जागीरदार हैं, उन्हें समझा कर एक करलो। समस्त बुन्देलखण्ड को स्वतन्त्रता के युद्ध में सहायता देने को कहो।

* यह वही दुर्ग है जिसको वीरवर तानाजी ने जीता था।

सब बुंदेलों को स्वतन्त्रता के झंडे के नीचे इकट्ठा करके शाही सेना से लड़ना आरम्भ करो, नहीं तो तुम्हारी बहुत सी शक्ति घरेलू युद्धों में व्यय होजायगी, और तुम निर्बल हो जाओगे।" इतना कहकर महाराज शिवाजी ने अपने आशीर्वाद-स्वरूप एक तलवार छत्रसाल की कमर में बांध दी और कहा, हे वीर बुन्देले! जाओ, मातृभूमि के शत्रुओं को मार कर बुंदेलखण्ड को स्वाधीन बनाओ। जब कभी तुम्हें हमारी सहायता की आवश्यकता हो तभी कहला भेजना। वीरवर छत्रसाल महाराज शिवाजी का आशीर्वाद पाकर लौट आये। बुंदेलखण्ड में आते ही उन्होंने चहुंओर स्वाधीनता के भाव जगाने के लिये अपने गुरू प्राणनाथ से प्रार्थना की और स्वयं युद्ध की तैयारियां करने लगे।

प्रभु प्राणनाथ समस्त बुंदेलखण्ड में घूम घूम कर सोते हुए बुंदेलों को जगाने लगे। उन्हीं के साथ छत्रसाल भी रहा करते थे। वह लोगों से कहते "वीर बुंदेलो! आज तक तुम्हारे पुरखों ने किसी के सामने सिर नहीं झुकाया। बुंदेलों की तलवार की चमक के सामने, वैरियों का कभी यह साहस नहीं होता था कि वे तुम्हारी मातृभूमि की ओर आंख उठा कर देख सकें। परन्तु तुम लोगों ने बुंदेलखण्ड को मुग़लों के हाथ बेच कर अपने उज्वल वंश में कालिमा लगा ली है। आज तुम्हारे देवालयों को तोड़ा जाता है और

तुम्हारी माताओं, बहिनों, और स्वयं तुम पर अत्याचार होता है। लेकिन तुम तो ऐसी गहरी नींद में सोये हो कि उठने का नाम ही नहीं लेते। अब समय आगया है कि तुम अपने इस कलंक को मिटाने के लिये युद्ध करने को तयार हो जाओ।" महाप्रभु प्राणनाथ के मुख से ऐसे शब्दों को सुनकर कौन बुंदेला वीर चुपचाप बैठा रह सकता था! बुंदेलों में मातृ-भूमि के प्रति श्रद्धा और भक्ति जागृत होने लगी, और वे लोग छत्रसाल के झंडे के नीचे आने लगे। धीरे धीरे यह अग्नि समस्त बुन्देलखण्ड में फैलगई और वीरवर छत्रसाल घूम घूम कर अपनी सेना में वीर बुन्देलों को भरती करने लगे।

आरम्भ में केवल तीन सौ वीर बुन्देलों को लेकर छत्रसाल ने मुग़ल सूबेदार तथा क़िलेदारों से लड़ाई छेड़ दी। छत्रसाल के हृदय में अग्नि भभक रही थी, युद्ध होते ही वे अपना पराक्रम दिखाने लगे। बुन्देला वीर घोड़ों पर सवार अपनी छोटी सी सेना लेकर सिरौंज * तथा अन्य स्थानों के सूबेदारों पर चढ़ गया। सब स्थानों पर घमासान युद्ध हुआ। भला, मौज से खाने पीने वाले मुसलमान सैनिक छत्रसाल का क्या सामना करते! छत्रसाल तो उनके लिये मानों बिजली के समान था; जिस ओर उसका घोड़ा बढ़ता, मुग़ल सिपाही जान बचाने के लिये रण-भूमि छोड़ भाग निकलते। इन

* यह मध्य भारत में, टोंक राज्य का एक ज़िला है।

स्थानों पर विजय प्राप्त करते ही छत्रसाल के नाम का, सब मुसलमानों पर, भय छा गया। बुन्देले राजपूत छत्रसाल की सहायता करने के लिये अधिकाधिक संख्या में आने लगे। अब तो छत्रसाल की सेना भी बढ़ गई, और, उन्होंने दुगने उत्साह से युद्ध करना आरम्भ किया। जब सम्राट औरंगज़ेब को छत्रसाल के विजयी होने के समाचार मिले तो वह आग बबूला होगया। उसने अपने सेनापति तहवरखां को लड़ने भेज दिया।

तहवरखां एक बहुत बड़ी सेना लेकर बुन्देलखण्ड पर चढ़ आया, किन्तु छत्रसाल की वीरता के सामने वह टिक न सका। अब तो सम्राट औरंगज़ेब की आंखें खुल गयीं, और उसने समझा कि यदि शीघ्र ही छत्रसाल को दबाया नहीं गया तो सारा बुन्देलखण्ड हाथ से निकल जायगा, और, फिर इस प्रान्त को अपने वश में लाना बहुत ही कठिन होगा। यह समझ कर उसने एक बहुत बड़ी सेना, सिपहसालार अब्दुलसमद के साथ भेजी। इधर वीरवर छत्रसाल भी समझ गये कि यही अन्तिम मोर्चा है। यदि इस युद्ध में ईश्वर ने विजयी कर दिया तब तो बुन्देलखण्ड सदा के लिये स्वतंत्र हो जायगा, नहीं तो दासता की बेड़ियां और भी जकड़ जांयगी। उन्होंने भी बुन्देलों को और अधिक संख्या में इकट्ठा करना प्रारम्भ कर दिया, और युद्ध की

तैयारियां करने लगे। जब मुग़ल सेना बेतवा नदी के किनारे आगई तो वीरवर छत्रसाल भी अपनी सेना लेकर आ जमे। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व, छत्रसाल ने ऊँचे स्वर में कहा, "वीर बुँदेलो! आज हमारी परीक्षा का दिन है। क्षत्रिय के जीवन में इससे अधिक शुभ बात और कौन सी हो सकती है कि हमारी तलवार मात्रभूमि के वैरियों को काटने के लिये चले। यह मुग़ल सेना बुन्देलखण्ड को गुलाम बनाने के लिये आयी है। क्या तुम अपने हाथों में तलवार रहते, बुन्देलखण्ड को गुलाम बन जाने दोगे? कभी नहीं। मुझे विश्वास है कि आज तुम मुग़लों को दिखा दोगे कि बुन्देले वीर अपनी मात्रभूमि की रक्षा करने के लिये अपने प्राण दे सकते हैं। मरना तो प्रत्येक को ही है, परन्तु अपने देश की रक्षा के लिये लड़ते लड़ते मरने में जो आनन्द व गौरव है, वह कायरों की भांति मरने में कहां है? यदि आज हमने कायरता का भाव दिखाया और उस कारण बुन्देलखण्ड मुग़लों के अधीन हो गया तो हमारी संतान हमारा नाम घृणा के साथ लिया करेंगी। इससे आओ, आज इस बेतवा नदी के किनारे खड़े होकर प्रण करें कि या तो मातृ-भूमि को सदा के लिये स्वाधीन बना देंगे, नहीं तो लड़कर यहीं प्राण दे देंगे।"

यह वीर वाक्य सुनकर सारी सेना ने जय ध्वनि के साथ इसका समर्थन किया। युद्ध आरम्भ हुआ। क्या ही भयंकर था वह युद्ध! वीर बुन्देले, सिंह के समान मुग़लों पर टूटने लगे। उस समय बुंदेलों की दृष्टि मुसलमानों के सिर पर थी। अपने प्राणों की परवाह न करके, वे गाजर मूलियों की भांति, बैरियों के सिर काटने लगे। छत्रसाल भी तीर की भांति कभी इस ओर तो कभी उस ओर घोड़ा फैंकते हुये अपने सैनिकों को उत्साहित करते जाते थे। यद्यपि बुंदेलों की सेना मुसलमानों की एक चौथाई भी नहीं थी, किन्तु उन मुट्ठी भर देश-प्रेम में मतवाले बुंदेलों ने शाही सेना के छक्के छुड़ा दिये। बुंदेलों ने इस युद्ध में अपनी जानों की बाज़ी लगादी थी। फिर, भगवान उन्हें विजयी क्यों न करता! मुग़ल सेना बुन्देलों के सामने अधिक देर तक न ठहर सकी; वह तितर बितर हो गयी। अब तो छत्रसाल विजय का डंका बजाते हुये लौटे, और उन्होंने समस्त बुन्देलखण्ड पर अपना अधिकार कर लिया।

पन्ना का नाम तो सुना ही होगा। मध्य भारत में अब भी इस नाम का एक राज्य है। छत्रसाल ने पन्ना नगर को ही अपनी राजधानी बनाया। वह केवल वीर योद्धा और शा-भक्त ही नहीं थे, उन्होंने बुन्देलखण्ड में राम-राज्य स्थापित कर दिया था। प्रजा आनन्द से रहने लगी।

मुसलमानों के अत्याचार बन्द हो गये। बुन्देलखण्ड स्वतन्त्रता के मधुर सुख का आनन्द लूटने लगा। महाराज छत्रसाल ने बहुत दिनों तक राज्य किया, परन्तु कभी भी प्रजा को दुःख न पहुंचने दिया।

पाठकों को यह जानकर अचम्भा होगा कि महाराज छत्रसाल बहुत अच्छे कवि और विद्वान भी थे। जो मनुष्य छोटेपन से जवानी तक केवल युद्ध करता रहा हो, उसके लिये अच्छा कवि होना एक आश्चर्यजनक बात है। तथापि, महाराज छत्रसाल को कविता से प्रेम था। उनके दरबार में बड़े बड़े प्रसिद्ध कवि आया करते थे। एक बार हिन्दी के प्रसिद्ध कवि भूषण, जो महाराज शिवाजी के दरबार में थे, पूना से अपने घर की ओर जाते समय पन्ना आये। महाराज छत्रसाल ने बहुत ही आवभगत के साथ उनका सत्कार किया। जब भूषण जी पालकी में बैठकर चलने लगे तो महाराज छत्रसाल ने उनकी पालकी का डण्डा स्वयं अपने कन्धे पर रख लिया। यह देखकर भूषणजी पालकी से कूद पड़े। छत्रसाल विद्वानों का आदर करना जानते थे, तभी तो आज उनकी प्रशंसा से भरे हुए ग्रन्थ मिलते हैं। हम में से आज कितने ऐसे हैं, जो ज़िलाधीश होकर पुराने ढंग के किसी पण्डित को आदर की दृष्टि से देखेंगे ?

महाराजा छत्रसाल केवल कवियों का आदर करना ही नहीं जानते थे, वे स्वयं भी अच्छे कवि थे। यहां केवल उनका एक कवित्त दिया जाता है; ये बातें उनके विषय में कैसी सच्ची हैं :—

ध्यानिन में ध्यानी, और ज्ञानिन ज्ञानी अहौं,
पण्डित पुरानी प्रेम बानी अरथाने का।
साहब सो सच्चा, कूर कर्मन में कच्चा,
छत्ता चम्पत का बच्चा सेर सूरवीर बाने का॥
मित्रन को छत्ता, दहि सत्रुन कों कत्ता,
सदा ब्रह्म-रस रत्ता, एक कायम ठिकाने का॥
नाहीं परवाही ध्यारा नौकिया सिपाही, मैं तो,
नेही चाह चाही एक स्यामा स्याम पाने का॥

महाराज छत्रसाल बड़े भक्त थे, साधु सन्तों का तो इनके यहां जमघट लगा रहता था। महाप्रभु प्राणनाथ के उपदेश से ही इनके हृदय में देश-प्रेम के भाव जागृत हुए थे। महाराज छत्रसाल ने पन्ना को अपने राज्य की राजधानी बनाया तो सही, परन्तु अपने महोबा ग्राम से उनको बहुत प्रेम था, और वे वहां सदैव आया जाया करते थे।

महाराजा छत्रसाल का बुढ़ापा भी शान्ति से न कटा।

उनका जीवन तो स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाने के लिये ही हुआ था। जब औरंगज़ेब के मर जाने पर मुग़ल साम्राज्य निर्बल पड़ गया तो सब सूबेदार स्वतन्त्र नवाब बन बैठे। इलाहाबाद और फ़र्रुख़ाबाद का सूबेदार बंगस ज़फ़रजंग अस्सी हज़ार सवार तथा चार सौ हाथी लेकर बुंदेलखण्ड पर चढ़ आया। महाराज छत्रसाल की आयु इस समय अस्सी वर्ष की थी, वे युद्ध करने के योग्य नहीं थे। उनके पुत्र आपस में ही लड़ते थे, इस कारण उनसे कोई आशा न थी। स्वतन्त्रता का यह बूढ़ा सिपाही अपनी सेना लेकर युद्ध करने के लिये तैयार हुआ। छत्रसाल जानते थे कि इस बार बुन्देलखण्ड की स्वतंत्रता को बचा लेना हँसी-खेल नहीं है, इस कारण उन्होंने नीचे लिखा हुआ दोहा बाजीराव पेशवा के पास लिख भेजा :—

जो बीती गजराज पर, सो बीती अब आय।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजीराय॥

मराठा वीर छत्रपति शिवाजी का स्वर्गवास हो गया था, और उनके पुत्र शम्भाजी भी औरंगज़ेब के हाथों मारे जा चुके थे। मराठा साम्राज्य की देख-भाल बाजीराव पेशवा करते थे। जब उन्हें वह पत्र मिला तो महाराज शिवाजी और छत्रसाल की मित्रता का ध्यान आया, और

वह एक बड़ी सेना लेकर वे सहायता को आ पहुँचे। अब, क्या था! महाराज छत्रसाल ने वंगस को मार भगाया और बुन्देलखण्ड को अपने बुढ़ापे में भी बचा लिया। इसके उपरान्त छत्रसालजी को और कोई युद्ध नहीं करना पड़ा। आज भी उनके वंशज बुन्देलखण्ड के पन्ना, बिजावर, चरखारी, मैहर तथा जैतपूर के राज्यों पर राज्य करते हैं। बुन्देलखण्ड के इतिहास में महाराज छत्रसाल का वही स्थान है जो मेवाड़ में महाराणा प्रताप का, महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी का, और पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह का, है।

'महाराजा छत्रसाल का जीवन प्रत्येक नवयुवक के लिये एक उज्ज्वल आदर्श है। हम उनके जीवन से क्या नहीं सीख सकते! अच्छा, महाराजा छत्रसाल में ऐसी कौन सी बात थी, जिससे एक साधारण जागीरदार होकर भी, वह ऐसा बड़ा काम कर सके? उनकी जीवनी को पढ़ने से ज्ञात होगया होगा कि उन्होंने अपने जीवन का एक लक्ष्य बना लिया था। दूसरे, उन्होंने संयम और दृढ़ता-पूर्वक अपने को उस कार्य के लिये तैयार किया। उनकी सफलता के यही दो कारण है। लेकिन एक बात ध्यान में रखनी चाहिये; जितना ही ऊंचा लक्ष्य होगा, उतनी ही अधिक तैयारी भी करनी होगी। हम में से बहुत से यह सोचते होंगे कि हम लोग इतने बड़े काम कैसे कर सकते हैं।

यह हमारी भूल है। महाराज छत्रसाल ने छोटेपन से ही अपने भारी काम के लिये तैयारियां की थीं। आज के नवयुवकों की भांति, उनको अपनी वेश-भूषा को सुधारने का समय ही नहीं मिलता था। हम लोग विलासी जीवन व्यतीत करके यशस्वी बनना चाहते हैं। वड़े आदमी बनने के लिये बड़ा त्याग चाहिये।

थोड़े दिनों से भारतवर्ष भर में महाराज छत्रसाल की जयन्ती, ज्येष्ठ-शुक्ला-तृतीया को, मनाई जाने लगी है। हर्ष की बात है कि महाराजा साहिब ने, महाराज छत्रसाल की, एक सुन्दर घोड़े पर सवार, मूर्ति पन्ना में लगवाई है। पाठकों में से यदि कोई पन्ना जाये तो उसे इस स्मारक का दर्शन अवश्य करना चाहिये। जिस प्रकार मन्दिर में जाने से भक्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार महाराज छत्रसाल जैसे नर-रत्नों के स्मारक के दर्शन करने से हृदय में साहस और विश्वास उत्पन्न होता है।

(५)

गुरु गोविन्दसिंह

पराधीनता सिंधु मधि डूबत हिन्दू हिन्द ।
तेरे कर पतवार अब, पतधर गुरु गोविन्द ॥

सिक्खों को कौन नहीं जानता ! क्या ही विचित्र है, यह जाति ! छः फ़ीट ऊँचा तन्दुरुस्त शरीर, बाल बढ़े हुये, हाथ में लोहे का कड़ा, कमर में लटकता हुआ कृपाण ही तो सिक्खों की पहिचान है । आज हम भारतीयों की दशा बिगड़ी हुई है, किन्तु, इस गये गुज़रे ज़माने में भी सिक्ख

दुनियां की एक बहुत बहादुर जाति है। जिन्होंने रेलो में, मेलों में, और फौज़ों में सिक्खों को देखा है, वह भारत की इस बहादुर जाति को जानते हैं। योरोपीय महायुद्ध में जब विदेशी लोग हमारे सिक्खों को लड़ते देखते थे तो दांतों तले अंगुली दबाते थे। अब तो अपनी जान दे देना सिक्ख अच्छी तरह जानते हैं, लेकिन दो ढाई सौ वर्ष पहिले ऐसी बात नहीं थी।

गुरु नानक के उपदेशों को मानकर यह जाति पंजाब प्रान्त में शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत करती थी। जो भोली भाली जाति कभी आनन्द-पूर्वक रहती थी, वह देखते देखते ऐसी प्रबल हो उठी कि उसने दिल्ली के सिंहासन को हिला दिया। सोई हुई सिक्ख जाति में उस शक्ति को भरने वाले गुरु गोविन्दसिंह ही हैं। आज भी इनके नाम को बच्चा बच्चा जानता है। यह सिक्ख धर्म के अन्तिम गुरु हुये। इनके पिता गुरु तेग़बहादुर उस समय गद्दी पर बैठे जब इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी औरंगजेब दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान था।

औरंगज़ेब तलवार के ज़ोर से इस्लाम धर्म को फैलाना चाहता था। हिन्दू मन्दिर तोड़े जा रहे थे, हिन्दुओं को बल-पूर्वक मुसलमान बनाया जा रहा था। ऐसे समय में गुरु तेग़ बहादुर अपने धर्म को फैलावें, यह कैसे देखा जा

सकता था ! बस औरंगज़ेब ने उन्हें पकड़वा मंगाया और मरवा डाला । जिस समय गुरु तेग़बहादुर मारे गये उस समय गोविन्दसिंह की आयु केवल पन्द्रह वर्ष की थी। उन्होंने सिक्खों को इकट्ठा किया और जोश भरे शब्दों में कहा "भाइयो ! तुम्हारे गुरु दिल्ली में मार डाले गये हैं। आज मैं तुम्हारे सामने शपथ लेता हूं कि इसका बदला लिये बिना शान्ति से जीवन व्यतीत न करूंगा। क्या तुम में से कोई ऐसा वीर है जो मेरे पिता की देह को दिल्ली से ला सके ?" इन शब्दों को सुनकर एक सिक्ख दिल्ली पहुंचा, और होशियारी से किसी तरह गुरु की देह को ले आया। पिता की अन्तिम क्रिया कर चुकने के बाद गुरु गोविन्दसिंह ने भावी कार्य करने के लिये तपस्या करना प्रारम्भ किया। महाराणा प्रताप की तरह उन्होंने सब सुखों पर लात मारदी । अपने घर की सारी सम्पत्ति सतलज नदी के अर्पण कर वे वैरागी बन गये। वे जानते थे कि देश की दशा सुधारने के लिये औरंगज़ेब जैसे शक्तिशाली सम्राट से लोहा लेना होगा; इस कारण अपने जीवन को संयमी बनाने लगे, और अस्त्र शस्त्र चलाना सीखने लगे।

उन्होंने सिक्ख जाति का अच्छा संगठन किया, और उनके महा मन्त्र से वह जाति सजीव हो उठी । सिक्ख जाति अपने गुरु की इतनी भक्त बन गई कि उनकी आज्ञा

उन में विधाता की लकीर के समान थी। उनकी प्रेरणा से सिक्ख भावी युद्ध के लिये तैयार होने लगे।

धन और सम्पति का लोभ तो गुरु गोविन्दसिंह जी को छू भी नहीं गया था। एक घटना इस बात पर अच्छा प्रकाश डालती है। एक बार उनका एक शिष्य बहु-मूल्य जड़ाऊ कंगन की जोड़ी उन्हें भेंट करने को लाया। गुरु ने प्रथम तो उसे लेना ही स्वीकार नहीं किया। शिष्यों के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने उसे पहिन भी लिया, तो शीघ्र ही एक कंगन नदी में फैंक दिया। जब उस शिष्य ने उनका एक हाथ ख़ाली देखा और इसके विषय में पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि कंगन नदी में गिर गया। ग़ोताखोर को बुलाकर शिष्य ने कंगन निकालने के लिये कहा और गुरु जी से हाथ जोड़ कर उस स्थान को बता देने की प्रार्थना की, जहां वह कंगन गिरा था। गुरुजी नदी के किनारे गये और उन्होंने दूसरा कंगन भी हाथ से निकाल कर नदी में फैंक दिया और कहा "यहीं कहीं गिरा होगा"। शिष्य लोग यह देख कर अवाक़् रह गये और गुरु के भाव को समझ गये। तभी से उनके शिष्य भी विलासी जीवन त्याग कर सादगी के साथ रहने लगे। गुरु गोविन्द सिंह तो जानते ही थे कि देश को इस अत्याचारी शासन से बचाने के लिये मुझे सिक्खों को लेकर एक दिन समर में

जूझना होगा, इसलिये उनका जीवन भी सादा होना आवश्यक है।

वीर शिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपने शिष्यों में सादगी का आदर्श तो रक्खा ही, साथ ही साथ वह अस्त्र शस्त्र चलाने और सैनिक शिक्षा गृहण करने के लिये अपने शिष्यों को बराबर उत्तेजित करते रहे। गुरु ने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि भविष्य में केवल युद्ध में काम आने वाली वस्तुओं को ही भेट में लाया करें। क्रमशः गुरु का भण्डार अस्त्र-शस्त्रों से भरने लगा, और गोविन्दसिंह जी भी एक धार्मिक गुरु के रूप में न रहकर, एक सेनापति के रूप में रहने लगे। जब उनके शिष्य गुरु के दर्शनों को आते तो गुरुजी उन्हें उपदेश देते, "भाइयो संसार में मनुष्य का जन्म तभी सफल होता है, जब हम अपने समाज, देश, और धर्म की सेवा कर सकें। लेकिन हम लोग आज परतंत्र हैं। इस कारण, हम किसी की भी सेवा नहीं कर सकते। हमारे लड़के मारे जाते हैं, हमारी स्त्रियों पर अत्याचार होता और हमारे धार्मिक स्थान नष्ट भ्रष्ट किये जाते हैं। सत्य मानो, संसार में गुलाम होकर रहना सब से भारी पाप है। ऐ सिक्खो ! क्या तुम दासता-कालिमा को मुख पर लगाकर पापी बनना चाहते हो ? नहीं, नहीं; मुझे विश्वास है कि तुम इस दासता की बेड़ियों को तोड़ डालना चाहते हो। समय

आगया है, जबकि स्वतंत्रता का युद्ध छिड़ेगा। जाओ उस युद्ध के लिये तैयारियां करो। मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम अवश्य विजयी होगे।" स्वतंत्रता के अखंड पुजारी गुरु गोविन्दसिंह जी इसी प्रकार सिक्ख समाज में जोश भरने लगे। सिक्ख समाज इससे उन्मत्त हो उठा। बच्चे बच्चे में देश और धर्म के नाम पर बलिदान होने के भाव जाग्रत होगये। जो सिक्ख जाति कभी तराजू की डंडी को ही पकड़ना जानती थी, उसकी म्यान में तलवार खनखनाने लगी। पंजाब भर में मानों बिजली दौड़ गई, प्रान्त भर में नवीन जोश फैल गया।

सिक्ख लोग गुरु में कितना विश्वास और श्रद्धा रखते थे, उसका उनके जीवन में, एक अत्यन्त उज्ज्वल उदाहरण, मिलता है। दाला नामक एक शिष्य जिसके यहां बहुत से सैनिक थे, बड़े गर्व के साथ गुरुजी से कहा करता था कि यदि कोई लड़ाई हुई तो मैं अपने वीर सैनिकों को लेकर रणभूमि में आपकी सेवा करूंगा। गुरु गोविन्दसिंह जी उसके कथन की परीक्षा करना ही चाहते थे, कि एक दिन उनके एक शिष्य ने एक बन्दूक़ गुरुजी को भेंट की। उन्होंने दाला से कहा कि तुम अपने किसी ऐसे योद्धा को बुलाओ, जिस पर बन्दूक़ का निशाना लगाया जा सके। दाला का कोई भी सैनिक इसके लिये तैयार न हुआ। यह जानकर

गुरुजी ने अपने नौकर को आज्ञा दी कि जो कोई सिक्ख मिले उससे कहो, और यदि वह इसके लिये तैयार हो तो उसे लिवा लाओ। नौकर ने आवाज़ लगायी तो दो सिक्ख, जो कहीं जा रहे थे, सुनकर वहां आ पहुंचे, और गुरुजी के हाथों मरने के लिये एक दूसरे से झगड़ने लगे। इस पर गुरुजी ने उन्हें समझा बुझा विदा कर दिया। दाला गुरुजी का यह प्रभाव देखकर दंग रह गया और गुरुजी के चरणों में लेट गया।

जब गुरु गोविन्दसिंह सिक्ख समाज में नया जीवन डाल रहे थे, उस समय उन्हें एक बात की कमी जान पड़ी। उन्होंने देखा कि हमारा समाज बहुतसी उपजातियों में बंटा हुआ है, और इन जातियों में इतना भेद भाव फैला हुआ है कि यदि इस बिखरी हुई समाज को एकता के सूत्र में नहीं बांधा जायगा, तो स्वतंत्रता का कार्य कभी सफल न हो सकेगा। उन्होंने विचारा कि जाति पांति का झूठा अहंकार यदि दूर न किया जायगा तो सिक्ख समाज में एकता और स्वतंत्रता के भाव जागृत न हो सकेंगे। बस, उन्होंने सिक्खों को उपदेश देना आरम्भ किया कि संसार में सब भाई भाई हैं, कोई किसी से छोटा या बड़ा नहीं है। अपने देश, जाति और धर्म के गौरव को रखने के लिये, सब को एक साथ प्रयत्न करना चाहिये। यही नहीं, उन्होंने नीच जाति के लोगों को

भो सिक्ख धर्म की दीक्षा देना प्रारम्भ कर दिया।

उनकी सूझ भी कितनी अनोखी थी, यह आगे बताई हुई घटना से स्पष्ट है। सिक्ख जाति के सामने अच्छा उदाहरण रखने के लिये उन्होंने सिक्खों की एक बहुत बड़ी सभा की। जब सभा मण्डप भरगया तो उन्होंने सिक्खों से कहा कि देवी मुझ से पांच सिक्खों का बलिदान मांगती है। तुम में से कौन इसके लिये तैयार है? सभा मण्डप में सन्नाटा छागया। गुरुजी तलवार निकाल कर खड़े हुए थे। उन के बड़े बड़े भक्त मौजूद थे, किन्तु नीच जाति के ही पांच शिष्यों ने गुरुजी के लिये बलिदान होजाना स्वीकार किया। गुरुजी ने उन पांचों का नाम "पंज प्यारा" रक्खा। सिक्ख समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी। गुरुजी ने अपने शिष्यों से कहा कि बड़ा वही है जो बड़े काम करे, ऊंचे वंश में उत्पन्न होने से ही कोई बड़ा नहीं बनता। इस बात का सिक्ख समाज पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों में ऊंच नीच का भाव जाता रहा, और सिक्ख लोग गुरूजी के लिये प्राण देने को तैयार रहने लगे।

इस प्रकार जब गुरूजी ने सोयी हुई सिक्ख जाति में नव-जीवन संचार कर दिया, तब वे शत्रुओं के नाश का उपाय सोचने लगे। सबसे पहले उन्होंने पञ्जाब के पहाड़ी

प्रदेशों के छोटे छोटे राज्यों के नरेशों को जातीयता के नाम पर उत्साहित करके अपने झंडे के नीचे लाने का प्रयत्न किया। किन्तु कायर राजा दिल्ली-सम्राट के विरुद्ध तलवार कैसे उठाते! उन्होंने गुरु की एक भी बात न सुनी। गुरुजी ने अपने शिष्यों को इन पहाड़ी राज्यों पर छोड़ दिया। सब राजाओं ने अपनी अपनी सेनाओं को लेकर गुरुजी के शिष्यों से युद्ध करने का विचार किया। आनन्दपुर के मैदान में, गुरु की सेना से उनका सामना हुआ। भला कायर लोग भी कहीं जातीयता के जोश में भरे हुये वीरों के सामने टिक सकते हैं। थोड़ी देर के ही युद्ध में, राजाओं की सेना तितिर बितिर होगई।

अपने इस अपमान का बदला लेने के लिये उन नरेशों ने दिल्ली सम्राट औरंगज़ेब को एक प्रार्थना पत्र भेजा, उसमें लिखा कि गुरु अब अपने को राजा कहने लगे हैं, और आपकी कुछ परवाह नहीं करते। हिन्दू धर्म का कट्टर वैरी औरंगज़ेब भला यह कैसे देख सकता था, उसने एक बहुत बड़ी सेना, गुरुजी को परास्त करने के लिये, भेजी। भगोड़े पहाड़ी राजाओं ने भी शाही सेना का साथ दिया, और सतलज और जमुना के बीच के मैदान सरहिंद में गुरु का इस सेना से भयंकर युद्ध हुआ। 'वाहे गुरु,' 'वाहे गुरु' 'सत्य श्री अकाल,' के नारे लगाते हुये सिक्ख लोग जूझने

लगे। वाहरे बहादुर सिक्खो! तुमने जो पराक्रम उस युद्ध में दिखाया वह अनोखा था। अपने गुरु के झंडे के नीचे खड़े होकर सिक्खों ने शाही सेना के छक्के छुड़ा दिये। लेकिन मुट्ठी-भर सिक्ख कब तक उस सेना से जूझ सकते थे! जब बहुत से सिक्ख खेत आये तो गुरु को आनन्दपुर के क़िले में जाकर रहना पड़ा। मुसलमानों ने गुरुजी को घेर लिया। बहुत दिनों तक गुरु क़िले के अन्दर बैठकर ही युद्ध करते रहे। भोजन-सामग्री समाप्त हो जाने पर वह एक रात को दुर्ग से निकले, इसी समय मुग़ल सिपाही भी जाग पड़े और घमसान युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में स्वयं गुरुजी ने वह पराक्रम दिखलाया कि शत्रु सेना चकित हो उठी। बात की बात में गुरु गोविन्दसिंह ने शाही सेना के सेनापति और सरहिंद के सूबेदार के सिर उतार लिये। इस युद्ध में गुरु के दो पुत्र वैरियों के हाथ पड़ गये; उन्हें, इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर, बड़ी निर्दयता से मारा गया। अब, गुरुजी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ता था, फिर भी उन्होंने अधीनता स्वीकार करने का विचार तक न किया।

जब गुरुजी आनन्दपुर के दुर्ग में घिरे हुये थे और भोजन सामग्री समाप्त होने वाली थी, उस समय कुछ शिष्यों ने गुरुजी को क़िले से बाहर निकल कर लड़ने की सलाह दी।

गुरुजी के स्वीकार न करने पर, वे उन्हें छोड़ कर चले गये। जब वे अपने गांव में पहुंचे तो उनकी जाति वालों ने उन्हें बहुत धिक्कारा, गांव के बूढ़े लोगों ने कहा "कायरो! तुमने हमारे गांव के नाम को कलंकित कर दिया। यदि तुम लोग गुरू के लिये अपने को बलिदान कर देते तो आज सारा देश तुम्हारा गुण गान करता। जाओ, ऐसे कायरों के लिये हमारे गांव में स्थान नहीं है।" सिक्खों की वह टोली इस प्रकार अपमानित होकर, अपने कार्य पर पश्चाताप करती हुई एक ओर चली गयी।

मुग़ल सेना गुरु गोविन्दसिंह की शक्ति को सदा के लिये नष्ट कर देने का विचार करके, भेजी गयी थी। इधर, गुरु के शिष्य भी देश के कोने कोने से आकर स्वतंत्रता के इस युद्ध में लड़ने के लिये इकट्ठे हुये थे। दोनों सेनायें रणभूमि में खड़ी हुई अपने सेनापतियों की बाट जोह रही थीं। यकायक एक छोटी सी सेना ने शाही सेना पर आक्रमण किया। घमसान युद्ध होने लगा, उस छोटी सी टुकड़ी के वीर सैनिकों ने थोड़ी ही देर में शाही सेना के बहुत से सैनिकों को यमलोक पहुंचा दिया। उस छोटी सी सेना ने शाही सेना के छक्के छुटा दिये। यह अवसर ठीक समझ कर गुरुजी ने भी शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। शाही सेना तितर बितिर होकर भाग निकली। उस

टोली के वीर सैनिक अपनी जान की परवाह न करके बराबर लड़ते रहे । जब शाही सेना हार गयी और सिक्ख लोग "वाह गुरु" की जय ध्वनि करने लगे, तो गुरु गोविन्दसिंह उस स्थान पर गये, जहां उस छोटी सी अनजान सेना के सैनिक मारे गये थे । गुरुजी ने उन्हें देखते ही पहिचान लिया कि वे आनन्दपुर के दुर्ग से भागे हुये हैं। उनके मुख से निकला "धन्य हो वीरो ! तुमने अपना कर्तव्य पालन किया।" गुरु ने अपने हाथों उन शिष्यों की अन्तिम क्रिया की, और वे अपनी मृत्यु तक उनकी प्रशंसा करते रहे।

गुरु गोविन्दसिंह के चरित्र से हमें एक बहुत बड़ी शिक्षा मिलती है। अपने लक्ष्य के सामने दुनिया की प्रिय से प्रिय वस्तु को भी तुच्छ समझना चाहिये। ध्यान रहे, गुलाम देश में देश सेवा का कार्य बहुत कठिन है। जो आदमी गुरु गोविन्द सिंह जी की भांति अपने कुटुम्बियों को तथा अपने को देश पर बलिदान कर सकते हैं, वही देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं। गुरु गोविन्दसिंह की वीरता को सुन कर औरंगजेब भी उनकी प्रशंसा किया करता था। एक बार तो उसने गुरु गोविन्दसिंह से मिलने की इच्छा प्रकट की, लेकिन गुरुजी ने कहला भेजा कि "मैंने यह युद्ध अपने को राजा बनाने के लिये नहीं छेड़ा, वरन् देश को स्वतंत्र बनाने के

लिये छेड़ा है। इसलिये जब तक हम इस कार्य में सफल नहीं होते, तब तक यह युद्ध होता ही रहेगा, मुझे आपसे मिलने की कोई भी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

यद्यपि गुरु गोविन्दसिंह अपने जीवन काल में सिक्खों का स्वतंत्र राज्य स्थापित नहीं कर पाये, तथापि उन्होंने सिक्ख जाति के अन्दर वह शक्ति पैदा करदी, जिसके कारण आगे चल कर वह बड़ी बलवान जाति बन गयी। आज हम अकालियों और सिक्खों में जो जीवन देखते हैं, उसको उत्पन्न करने वाले गुरु गोविन्दसिंह ही थे। आज भी गुरु गोविन्दसिंह का नाम हृदय में बिजली के समान उत्साह की लहर पैदा करता है। करोड़ों आदमी उनका नाम श्रद्धा और भक्ति से लेते है। संसार में, जो मनुष्य अपने स्वार्थ का ध्यान न रखकर, अपने को देश और जाति के नाम पर बलिदान कर देता है, वही यश और सम्मान पा सकता है।

गुरुजी के हाथों से एक मुसलमान युद्ध में मारा गया था। उसके दोनों छोटे लड़कों का गुरुजी ने लालन पालन किया। उन्हीं लड़कों ने एक बार अवसर पाकर गुरुजी की छाती में छुरा भोक दिया। लड़के पकड़ लिये गये और गुरुजी का घाव बांध दिया गया। उस समय गुरुजी ने

जो शब्द कहे, वे उनकी उदारता का एक अच्छा नमूना है। उन्होंने कहा, "भाइयो! इन लड़कों को छोड़ दो, इन्होंने केवल अपने पिता की मृत्यु का बदला ही तो लिया है। मैं इन्हें हृदय से क्षमा करता हूं।"

इस घटना के कुछ दिन बाद उनका एक शिष्य एक बहुत बड़ा धनुष लाया। उस धनुष के विषय में यह प्रसिद्ध था कि भारतवर्ष में कोई योद्धा इसे नहीं चला सकता। गुरुजी ने उस धनुष को हाथ में लिया और तीर रख कर चला दिया। तीर लगभग तीन मील की दूरी पर जाकर गिरा। शिष्य लोग उनके इस अलौकिक बल को देखकर दंग रह गये, किन्तु गुरुजी की छाती का घाव ज़ोर पड़ने से खुल गया, और रक्त-प्रवाह के न रुकने से उनका देहान्त हो गया। आज गुरु गोविन्दसिंह जीवित नहीं हैं, फिर भी जब हम किसी अकाली सिक्ख के बलिष्ठ शरीर तथा आन पर जान देने वाले बाण को देखते हैं, तब ही उनका ध्यान आ जाता है।

कुछ स्थानों पर गुरु गोविन्दसिंह की जयन्ती मनायी जाने लगी है। उस जयन्ती को हमें एक राष्ट्रीय त्योहार बना कर देश भर में मनाना चाहिये। ऐसे नर रत्नों की स्मृति से ही जाति में नव-जीवन संचार होता है। आज हमें ऐसे स्वतंत्रता के पुजारियों की पूजा सीखनी होगी; तभी हम लोग उस पवित्र ध्येय को समझ सकेंगे।

(६)

महारानी लक्ष्मी बाई

संयुक्त प्रान्त के दक्षिण में वह भूमि है, जिसे बुन्देलखण्ड कहते हैं। इसके विषय में हम यह पहिले ही लिख आये हैं कि यह बुंदेले राजपूतों का देश है। झांसी इस बुन्देलखण्ड का एक भाग है। यद्यपि अब झांसी ब्रिटिश भारत में है, सन् १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य युद्ध के पूर्व, यह एक स्वतन्त्र राज्य था। महारानी लक्ष्मी बाई इसी राज्य की मालिक थीं।

इस महारानी को कौन नहीं जानता ! अभी बहुत दिन नहीं हुये, जब कि उसकी तेज़ तलवार, झांसी के युद्ध में चली थी। अधिकांश भारतवर्ष अंग्रेज़ों की अधीनता स्वीकार कर चुका था। वीर राजपूत, मराठों, बुंदेलों और सिक्खों का भी पतन हो चुका था। भारतवर्ष से वीरता तथा स्वतन्त्रता का प्रायः लोप हो चुका था। ऐसे भयंकर समय में महारानी लक्ष्मी बाई ने जो पाठ पढ़ाया, वह अद्वितीय है।

अंग्रेज़ व्यापारियों के भुलावे में आकर जिस समय भारतवासी दासता में ही सुख मान रहे थे, और इस विशाल देश की स्वतन्त्रता को झूठी शान्ति के लिये बेच कर गहरी नींद में खुर्राटे लगाने लगे थे, उस समय एक व्यथित हृदय, देश के इस पतन को देखकर बुंदेलखण्ड के एक क़िले में रो रहा था। जानना चाहते हो वह कौन सी वीर आत्मा थी ? वह थी महारानी लक्ष्मीबाई। भारतवर्ष का इतिहास बड़े बड़े वीरों और स्वतंत्रता के पुजारियों की कथाओं से भरा पड़ा है, किन्तु झांसी की रानी तो इतिहास का एक बहुत ही चमकता हुआ रत्न है। मुग़ल साम्राज्य, तथा उसके पश्चात् मराठा साम्राज्य के छिन्न भिन्न हो जाने पर जिस प्रकार ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने इस विशाल देश को युक्ति से हथिया लिया वह तो सबको

विदित ही है। उस समय देश में फूट का साम्राज्य था। सारे रजवाड़े और रियासतें कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर चुकी थीं। जो राजपूत जाति अपनी आन पर मिटना जानती थी, वह भी गुलामी का जुआ अपने कन्धों पर रख चुकी थी। जब कि सारा देश दासता में ही सुख मान कर उसकी ओर दौड़ा जा रहा था, उस समय रानी लक्ष्मी बाई उदास-हृदय हो, कुछ गम्भीर विचार कर रही थीं।

लगभग सौ वर्ष हुये, काशी में १६ नवम्बर १८३५ ई० के दिन राव मोरापन्त ताम्बे के घर में इस स्वतन्त्रता की मूर्ति ने जन्म लिया था। बड़ी होने पर लक्ष्मीबाई का विवाह झांसी के राजा गंगाधर राव के साथ हुआ। अभाग्यवश थोड़े ही वर्षों बाद राजा गंगाधर राव का देहान्त हो गया। अपनी मृत्यु के पहिले ही उन्होंने अपने वंश के एक लड़के को गोद लेकर गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौज़ी को इसकी सूचना दे दी थी। लेकिन डलहौज़ी ने देखा कि इस समय झांसी को छीन लेने का अच्छा अवसर है। उसने आज्ञा दे दी कि यह अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया जावे, और रानी को पेन्शन दे दी जाय। वीर रमणी यह चाल देख कर तड़प उठी। अपने राज्य को विदेशियों के हाथ में जाता देखकर किसके हृदय में दुख नहीं होता! लक्ष्मीबाई ने सरकार को लिखा कि

हमारा राज्य स्वतन्त्र है, हमने अंगरेज़ों से सन्धि करली थी, इसका यह अर्थ नहीं है कि अंग्रेज़ लोग हमारा राज्य छीन सकते हैं। परन्तु अंग्रेज़ी सरकार एक स्त्री की बात पर कब ध्यान देती! लार्ड डलहौज़ी के इस कार्य की निन्दा तो स्वयं अंग्रेज़ लेखकों ने की है। रानी के देखते देखते, उसका प्यारा राज्य विजातियों के हाथ में चला गया।

जिस दुर्ग पर झांसी राजवंश की पताका फहराया करती थी, उस पर अंग्रेज़ों के झण्डे को हवा में उड़ता देखकर रानी लक्ष्मी बाई के हृदय में बड़ी वेदना उत्पन्न हुई। उन्होंने सोच लिया कि यदि मैं इस झण्डे को उखाड़कर झांसी राजवंश की ध्वजा को न फहरा सकी तो मेरा जीवन व्यर्थ है। उनके मन्त्री ने उन्हें यह कह कर शान्त करना चाहा कि अंग्रेज़ों की अधीनता सब लोगों ने स्वीकार करली है, हमारे लिये भी चुप रहना ही ठीक है। रानी ने आवेश में मन्त्री को उत्तर दिया—"मन्त्री जी! जिस झांसी के राज्य पर मेरे पति ने शासन किया है, जिस भूमि पर मेरे पूर्वजों का अधिकार रहा है, उसी भूमि पर आज, मेरे रहते, विदेशी लोग विलास करें, और मैं अपमानित होकर अपने उस की दुर्गति को देखती रहूं! मानती हूं, आज भारतवर्ष के राजपूत, मराठे और सिक्ख कायर बनकर अंग्रेज़ों की चाटुकारिता में ही दिन

बिताते हैं, किन्तु झांसी की रानी की भुजाओं में बल है और और वह तलवार पकड़ना जानती है।"

लार्ड डलहौज़ी ने केवल इतना ही नहीं किया कि वह झांसी का राज्य छीन लेते, वरन् उन्होंने रानी से कहा कि स्वर्गीय राजा गंगाधर राव के लिये हुए रुपये को चुका दें। भला, वीर रमणी इस बात को कब स्वीकार कर सकती थीं! उन्होंने निडर होकर रुपया देने से इनकार कर दिया। उन्होंने उत्तर दिया कि जब तुमने राज्य ले लिया है तो राज्य के ऊपर जो क़र्ज़ है, उसके देनदार भी तुम ही हो।" लार्ड डलहौज़ी ने इसकी नितान्त अवहेलना की, और वह रुपया रानी की पैन्शन से काट लिया।

जब से झांसी का राज्य अंग्रेज़ों के अधिकार में आया, तभी से प्रजा पर अत्याचार होने लगे। हिन्दुओं के कई मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया, मन्दिरों को दी हुई सम्पत्ति छीन ली गई, हिन्दुओं के सामने गायें मारी जाने लगीं। झांसी राज्य की प्रजा इन अत्याचारों को सहन न कर सकी, और वे रानी के पास आये। जब रानी लक्ष्मीबाई ने इन अत्याचारों की कथा सुनी तो वह क्रोध में भर कर कहने लगीं "आज मैं असहाय हूं, झांसी राजवंश सर्वदा

को नष्ट हो गया, अपने देश की इस दुर्दशा को देखकर मुझे वेदना होती है, लेकिन जब तुम लोग दासता में ही सुख मानने लगे हो, तो मैं कर भी क्या सकती हूं। यदि दासता अखरती है, तो जाओ, देश को तैयार करो। मेरी भुजाओं में बल है, एक बार फिर स्वतंत्रता-देवी को मनाने का प्रयत्न करूंगी।"

इसी समय भारतवर्ष में अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध घृणा के भाव जागृत हो उठे थे। लार्ड डलहौज़ी की कठोर नीति के कारण सारा देश दुखी हो उठा था। नाना साहिब तथा तातयां टोपी ने एक बार देश को स्वतंत्र बनाने के लिये विद्रोह की अग्नि भड़का दी थी। यह आग केवल उत्तर भारत में ही फैल कर न रह गई, वरन् सारे हिन्दुस्थान में फैल गई। जब झांसी की सेना ने भी विद्रोह किया और कुछ अंग्रेज़ी अफ़सरों को मार डाला तो अंग्रेज़ों ने झांसी के क़िले की शरण ली। थोड़े दिनों तक अंग्रेज़ क़िले में घिरे रहे, अन्त में उन्होंने विद्रोहियों से सन्धि करली। किन्तु उनके बाहर निकलते ही विद्रोहियों ने उन्हें मार डाला। कुछ अंग्रेज लेखकों ने इस नीच कर्म में रानी को कलंकित करने का प्रयत्न किया है। लेकिन यह तो सभी इतिहास जानने वालों को मालूम है कि यह कार्य रानी लक्ष्मी बाई की इच्छा या सम्मति से नहीं हुआथा। जो वीर रमणी अपने

देश की रक्षा के लिये जान की परवाह न करके युद्ध कर सकती हो, वह असहाय स्त्रियों और बच्चों को कैसे मरवा सकती है! बहुत से अंग्रेज़ लेखकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि इस भयंकर कार्य में रानी का हाथ नहीं था। सच बात तो यह थी कि अंग्रेज़ी अफ़सरों की अधीनता में रहने वाली हिन्दुस्थानी सेना अंग्रेज़ों के खून की प्यासी हो रही थी, और उस सेना के विद्रोही होजाने पर, रानी अंग्रेज़ों को उसके हाथ से नहीं बचा सकतीं थीं। अस्तु, जब अंग्रेज़ों को मार डाला गया, और झांसी में कोई प्रबन्ध न रहा तो प्रजा ने रानी लक्ष्मी बाई को सिंहासन पर बिठलाकर, उन्हें अपनी रानी मान लिया।

महारानी लक्ष्मी बाई अनुपम सुंदरी थीं। लम्बा कद, और सुडौल बदन था। फुर्ती और बल तो मानों उनके शरीर में भरा हुआ था। घोड़े पर बैठ कर युद्ध करने में वे निपुण थीं हीं, साथ ही साथ, राजनीति के दाव-पेचों को वे खूब समझती थीं। सिंहासन पर बैठकर जिस खूबी से उन्होंने राज्य किया था, उसकी प्रशंसा तो उनके शत्रुओं ने भी की है। अंग्रेज़ इतिहास लेखकों ने लिखा है कि रानी लक्ष्मीबाई ने राज्य का कार्य ऐसे अच्छे ढंग से संभाला कि थोड़े ही दिनों में झांसी राज्य की प्रजा उसके लिये जी-जान से मरने को तैयार होगयी। रानी लक्ष्मीबाई जानतीं थीं कि अंग्रेज़ों से युद्ध

अवश्य करना होगा, इस कारण उन्होंने सिंहासन पर बैठते ही किले की मरम्मत करवायी और सेना में वीर बुन्देलों को भरती किया। अपनी रानी की इस लगन को देखकर, झांसी के छोटे से राज्य के लोग भी देश-प्रेम में मतवाले होकर, अपने राज्य की रक्षा करने के लिये जी-जान से तैयारियां करने लगे। रानी लक्ष्मीबाई ने उस समय यह प्रयत्न भी किया कि तातयां-टोपी, नाना साहिब, तथा अन्य नेताओं को लेकर सारे भारतवर्ष को स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया जाय। लेकिन दुर्भाग्य से इन नेताओं के हृदय में देश को स्वतंत्र करने का भाव इतना प्रबल नहीं था, जितना कि स्वयं स्वतंत्र राजा बनने का। इसी कारण, स्वतंत्रता का वह संग्राम विफल हुआ।

दूसरे वर्ष ही सेनापति हेग की देख रेख में, एक बहुत बड़ी सेना झांसी विजय करने के लिये भेजी गयी। जब अंग्रेज़ी सेना झांसी के समीप आगयी, तब महारानी ने अपने मन्त्रियों से सलाह ली कि अब क्या करना चाहिये। कुछ लोगों ने यह राय दी कि अंग्रेज़ों से जीतने की कोई आशा नहीं है, इस कारण सन्धि कर लेनी चाहिये। लेकिन वीर रमणी कायर बनकर अंग्रेज़ों की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहती थी। रानी ने मन्त्रियों से कहा "मैं मानती हूं कि अंग्रेज़ी सेना से जीतना कठिन है, क्यों कि बहुत से देश-

द्रोही भारतीय भी उसी के साथ हैं। लेकिन कायरों की भांति अपने को इनके हाथ में दे देने से तो रण-भूमि में दो दो हाथ लड़ कर मरना कहीं अच्छा है। अंग्रेज़ी सरकार में इतनी उदारता नहीं हैं कि वे शत्रु को क्षमा कर सकें। यदि तुम आज इनकी अधीनता स्वीकार करते हो तो कल ही तुम्हें फांसी दे दी जायगी। समझलो, देश की स्वतंत्रता के लिये बलिदान होने में गौरव है, या अपने शत्रु के हाथ में पड़ कर कुत्ते की भांति मरना अच्छा समझते हो। मरना अवश्य है, दो प्रकार की मौतों में से तुम्हें कौनसी पसंद है, चुन लो। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि चाहे तुममें से कोई भी मेरा साथ न दे, किन्तु जब तक मेरे हाथ में तलवार है तब तक मैं शत्रु की अधीनता स्वीकार नहीं करूंगी"। रानी के यह वीर वाक्य सुन कर सबके हृदय में बिजली सी दौड़ गई, और वे युद्ध के लिये तैयार होगये।

अंग्रेज़ी सेना ने दाहिनी ओर की पहाड़ियों तथा सामने की ऊँची भूमि पर अपनी तोपें को लगा कर झांसी के क़िले पर धावा बोल दिया। रानी ने भी अपनी तोपों को क़िले की दीवारों पर चढ़ाकर युद्ध करना आरम्भ कर दिया। दिन भर दोनों ओर की सेनायें अग्नि-वर्षा करती रहती थीं। युद्ध के दिनों में, रानी की वीरता देखने ही योग्य थी। क़िले की दीवार पर खड़े होकर, वह अपने सैनिकों

को उत्साहित करती रहती। जब कभी दीवार गोलों की मार से टूट जाती तो महारानी उसी समय उसकी मरम्मत करवातीं। क्या ही विचित्र था, वह युद्ध ! बुन्देलखण्ड के पथरीले तथा बनों से भरे हुये प्रान्त में देश की रक्षा के लिये एक वीर रमणी अपने थोड़े से सिपाहियों को लेकर जूझ रही थी। अंग्रेज़ी सरकार की समस्त शक्तियां उस समय झांसी के क़िले को नष्ट कर देने के लिये इकट्ठी की गयी थीं। किन्तु, वाहरी झांसी की रानी ! तुम धन्य हो, तुमने विदेशियों के दांत खट्टे करके यह दिखला दिया कि भारतवर्ष के इन बुरे दिनों में भी देश की स्वतंत्रता के लिये यदि पुरुष अपना बलिदान नहीं कर सकते तो स्त्रियां ही इस कार्य को करेंगी ! भारतवर्ष की इस पतित अवस्था में भी महारानी लक्ष्मी बाई का चरित्र हमारे इतिहास में अत्यन्त उज्ज्वल है। क्यों न हो, जिन लोगों ने किसी ऊंचे आदर्श को लेकर त्याग किया है, उन्हीं की अमर कीर्ति हमें सुनायी देती है। रानी लक्ष्मीबाई आज संसार में नहीं है, किन्तु उनकी वीरता की कथा देश भर में गायी जाती है। गावों में जाकर, चौपालों पर ढोलक और मंजरी के साथ, साधु की खंजरी पर, और वैरागियों के एकतारे पर, जिन्हें लक्ष्मीबाई के कीर्ति-गान सुनने को मिले हैं, वे जानते हैं कि रानी लक्ष्मी बाई अमर हैं।

बहुत दिनों तक इसी प्रकार युद्ध चलता रहा, किन्तु

अंग्रेज़ी सेना की भयंकर तोप की मार से किले की दीवार एक ओर गिर गयी, और अंग्रेज़ी सेना टीडी दल की भांति उस ओर लपकी। सेनापति हेग तो यह समझते थे कि अब क्या है, किला हाथ आगया। किन्तु जब वे पास पहुँचे, तो जो कुछ देखा, वह अद्भुत् था। रानी की थोड़ी सी सेना दीवार के स्थान पर खड़ी थी और रानी स्वयं, घोड़े पर सवार, हाथ में नंगी तलवार लिये हुए सेना की देख-भाल कर रही थीं। अंग्रेज़ी सेना को देखते ही रानी सिंहनी की भांति उस पर झपटी। देखते ही देखते वीर रमणी ने बहुत से बैरियों को सदा के लिये पृथ्वी पर सुला दिया। अब अंग्रेज़ों यह पता चला कि दुर्ग में घुसना उतना सहल नहीं है जितना कि वे समझ बैठे थे। एक साथ सैकड़ों तलवार म्यानों से निकल आयीं, घमासान युद्ध होने लगा, एक के बाद दूसरी लाश गिरने लगी। रानी की तलवार तो मानों अंग्रेज़ों का काल ही हो रही थी। उस चांदनी रात्री में तलवारों की चमक कैसी निराली दिखायी देती थी। रानी अपनी छोटी सी सेना को लेकर किले की रक्षा का प्रयत्न कर रही थीं, किन्तु भाग्य ने साथ नहीं दिया। अंग्रेज़ी सेना बढ़ने लगी, फिर भी रानी ने उत्साह नहीं छोड़ा, और, अधिक उत्साह से लड़ने लगीं। इतने में अंग्रेज़ी सेना की एक टुकड़ी दूसरी ओर से किले की दीवार को

पार कर गयी। अब रानी समझ गयी कि क़िले की रक्षा करना असम्भव है। जैसे ही उन्होंने देखा कि शत्रुओं ने पीछे से भी उनकी सेना पर धावा कर दिया है, वैसे ही तीर की भांति रानी ने अपना घोड़ा अंग्रेज़ी सेना की ओर दौड़ाया।

उस समय लक्ष्मी बाई कालिका के समान असंख्य अंग्रेज़ी सेना को इस प्रकार चीरती चली जा रही थीं कि मानों कोई कुशल किसान अपने हँसिये से खेत को काट कर रास्ता साफ़ कर रहा हो। अंग्रेज़ सैनिक इस भारतीय रमणी की वीरता को देखकर अचम्भित थे। उन्होंने बहुत से युद्ध किये थे, किन्तु जान पर खेल कर सारी सेना को अकेले एक रमणी चीरती हुई निकल जाय, यह दृश्य तो उन्होंने उसी दिन देखा। जब वीर रानी इस प्रकार अंग्रेज़ी सेना को रौंदती हुई बाहर निकल गयीं तो कुछ सैनिकों ने उनका पीछा किया। लक्ष्मी बाई घूम कर खड़ी हो गयीं, और थोड़ी सी देर में पीछा करने वाले शत्रुओं को सदा के लिये पृथ्वी पर सुला कर आगे बढ़ गयीं। दिन भर बिना कुछ खाये पिये, घोड़ा दौड़ाती हुई वह १०२ मील की यात्रा करके कालपी पहुँच गयीं। वहां पर राव साहिब पेशवा ने अपना अधिकार कर लिया था,

उन्होंने रानी से प्रार्थना की कि आप हमारी सेना की देख भाल करें। वीर रमणी के हृदय में अंग्रेज़ों से घृणा हो उठी थी। उनका देश शत्रुओं के हाथ में चला गया था, इस कारण, उन्होंने सोचा कि क्यों न एक बार फिर रण-भूमि में मोर्चा लूं। कालपी का युद्ध बहुत ही भयंकर हुआ। रानी ने अद्भुत वीरता दिखलायी, लेकिन पेशवा की सेना में अधिकतर बलवाई ही भरे हुए थे, जिनका उद्देश्य केवल लूट-पाट करना था। भला, ऐसे लोग जान पर खेल कर कैसे लड़ सकते थे, अतः, वहां पर भी विजय अंग्रेज़ों के ही हाथ रही।

वहां से निराश हो जाने पर रानी लक्ष्मी बाई ने ग्वालियर का क़िला ले लिया। उस स्थान पर पेशवा की सेना को लेकर जो घमासान युद्ध हुआ, वह इतिहास के जानने वालों से छिपा नहीं है। लेकिन राव साहिब पेशवा तथा तांतया-टोपी के सिपाहियों में देश को स्वतन्त्र बनाने के भाव नहीं थे, वे तो लूट-मार की आशा से ही उनकी सेना में भरती हुए थे। थोड़ी देर के युद्ध में ही पेशवा की सेना भाग निकली। घायल रानी ने देखा कि अब यहां रहना व्यर्थ है, वे भी अपना घोड़ा दौड़ाकर एक ओर बढ़ीं, लेकिन अंग्रेज़ी सेना उनका पीछा कर रही

थी। एक चौड़े नाले के रास्ते में आ जाने से उनका घोड़ा रुक गया। रानी ने देखा कि अंग्रेज़ी सेना पास ही आ गयी है। बस, उन्होंने घोड़ा मोड़ कर युद्ध करना आरम्भ कर दिया। जब वे शत्रु सेना में घिरी हुई युद्ध कर रही थीं, तब एक गोली उनकी छाती में आकर लगी। गोली के लगने के साथ ही साथ एक सवार ने उन पर तलवार का वार किया, जिससे उनका आधा गला कट गया। लेकिन, धन्य हो लक्ष्मी बाई! तुमने मरते समय भी अपनी तलवार के एक ही हाथ से उस अंग्रेज़ सैनिक का सिर काट दिया। थोड़ी देर में रानी का शव घोड़े से गिर पड़ा। जब झांसी की रानी के मारे जाने की सूचना अंग्रेज़ सेनापति हेग को मिली तो उन्होंने कहा कि महारानी लक्ष्मी बाई के बराबर योग्य और बहादुर सेनापति मेरे देखने में और कोई नहीं आया। क्यों न हो, सच्चे वीर की प्रशंसा उसके बैरी भी करते हैं।

आज झांसी की रानी इस संसार में नहीं हैं। अंग्रेज़ लेखकों ने उन्हें बाग़ी कह कर बदनाम किया है, लेकिन कोई भी मनुष्य, जो बुद्धि रखता है, कह सकता है कि एक स्वतन्त्र राज्य की स्वामिनी होते हुए उन्हें यह अधिकार था कि वे अपने शत्रुओं से अपने राज्य की रक्षा करतीं। यदि अपने देश और राज्य की रक्षा करना विद्रोह

है तो संसार में कौन वीर इस पाप से बचा हुआ है। अंग्रेज़ लेखक चाहे कुछ भी कहें, हिन्दुस्तान का बच्चा बच्चा महारानी की बहादुरी और देश-भक्ति को जानता है। रानी लक्ष्मीबाई मर कर भी अमर हो गयी, क्योंकि वे अपने सुखों पर लात मार कर देश के नाम पर बलिदान हो गयी।

आज भी झांसी का दृढ़ दुर्ग उस पहाड़ी पर खड़ा हुआ, मानों रानी लक्ष्मीबाई के त्याग की कहानी सुना रहा है। जिन्होंने झांसी के क़िले को देखा है, वे जानते हैं कि उसे देखने से हृदय में कैसे वीर भावों का संचार होता है। झांसी जंकशन से जो सड़क शहर की ओर जाती है उसी पर चले जाइये, पथरीला प्रदेश अपना एक अनोखा सौन्दर्य रखता है। स्टेशन से लगभग एक मील दूर दाहिने हाथ पर झांसी का प्रसिद्ध दुर्ग खड़ा है। उसके समीप ही थोड़ी दूर पर वे पहाड़ियां दिखाई देती हैं, जहां से अंग्रेज़ी सेना ने अपनी तोपों को रखकर गोले बरसाये थे। अंग्रेज़ों ने उस युद्ध के स्मारक स्वरूप उन छोटी पहाड़ियों पर छोटे छोटे स्तूप बनवा दिये हैं। झांसी के दुर्ग के अगले भाग में अंग्रेज़ी झंडा 'यूनियन जैक' फहरा रहा है। लेखक के हृदय ने कहा कि किसी दिन महारानी लक्ष्मी बाई की ध्वजा बुन्देलखण्ड के इस क़िले पर फहराती होगी। खेद है कि

झांसी में रानी लक्ष्मी बाई का कोई चिन्ह नहीं है। जिस स्थान में स्वतन्त्रता की उस उपासिका ने अपना बलिदान कर दिया हो, वहां उसका कोई स्मारक न देखकर हृदय को दुःख होता है। महारानी लक्ष्मीबाई का समाधि-स्थान ग्वालियर से कुछ दूर निर्जन स्थान में आज भी विद्यमान है।

रानी लक्ष्मी बाई का जन्म दिन १६ नवम्बर सन् १८३५ ई० है। कुछ समय से उनकी जयन्ती, ग्वालियर और झांसी आदि में मनायी जाने लगी है। उस दिन बहुत से मनुष्य उनके समाधि-स्थान पर श्रद्धाञ्जली चढ़ाने जाते हैं। वहां जाकर ज्ञात होता है कि महारानी लक्ष्मी बाई मर कर भी अमर हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि उनकी जयन्ती देश भर में मनायी जाय, तथा उनका अच्छा सा स्मारक बनवाया जाय।

आज हमारी मातायें और बहिनें महारानी लक्ष्मीबाई के चरित्र से क्या नहीं सीख सकतीं! स्त्री जाति कुछ नहीं कर सकती, यह विचार जब तक स्त्री समाज से दूर नहीं होता, तब तक हमारी मातृ-शक्ति ऐसी हीन दशा में ही रहेगी। इस विषय में हम पुरुषों का भी कुछ कर्त्तव्य है। पर्दे में रखकर, क्या हम अपनी माताओं और बहिनों में

लक्ष्मी बाई सरीखी वीर रमणियां पैदा कर सकेंगे ! देश को महारानी लक्ष्मी बाई सरीखी वीर महिलाओं की आवश्यकता है, तभी देश और जाति पर बलिदान हो जाने वाले पुत्र उत्पन्न हो सकेंगे।

× × × ×

चौधरानी सुभद्राकुमारी ने क्या ही ठीक कहा है :—

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी फिर से आयी नयी जवानी थी।
गुमी हुई आज़ादी की क़ीमत सबने पहिचानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुँदेले, हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी॥

(७)

महाराणा सांगा

लसति जासु पवि-देह पै असी घाव की छाप ।
सो सांगा निज सांग तें दले न काको दाप ॥
हे राणा सांगा, तुहीं रण में मरद मलाह ।
किते न खांड़े-घाट तें दिये उतारि गुमराह ॥

—वियोगी हरि

वीर भूमि चित्तौड़ इतिहास में अमर है। यह चित्तौड़

पहिले मेवाड़ की राजधानी था। अजमेर से जो रेलवे लाइन खंडवा की ओर जाती है, उसी पर चित्तौड़गढ़ जंकशन पड़ता है। आज भी इस दुर्ग को देखकर हृदय में एक अनोखा भाव और उत्साह उत्पन्न होता है।

जिन दिनों की बात हम लिख रहे हैं, उन दिनों चित्तौड़ आज कल की भांति वीरान नहीं था। महाराणा रायमल चित्तौड़ के राज सिंहासन पर विराजमान थे। महाराणा संग्राम सिंह इन्हीं महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र थे। राय-मल के दो पुत्र और भी थे, एक का नाम पृथ्वीराज, और दूसरे का जयमल था। संग्रामसिंह और पृथ्वीराज भारतवर्ष में वीरता के लिये प्रसिद्ध थे। किसी की भी यह हिम्मत नहीं होती थी कि वह इन दो भाइयों के सामने तलवार पकड़ सके। संग्रामसिंह बहुत बुद्धिमान थे, परन्तु उनके छोटे भाई का जीवन तो मानों युद्ध के ही लिये हुआ था। वे तो रणभूमि में ही सुखी रह सकते थे। पृथ्वीराज को अपनी वीरता का भरोसा था, वे कहा करते थे कि चित्तौड़ के पवित्र राज सिंहासन पर बैठने योग्य तो मैं ही हूं। इस बात पर तीनों भाइयों में मन-मुटाव रहता था। एक दिन काका सूरजमल की सलाह से यह निश्चय हुआ कि चारणी देवी के मन्दिर में जाकर बात तय करली जाय।

चित्तौड़ से पचास मील की दूरी पर चारणी देवी का

मन्दिर दिखाई दे रहा था। तीनों राजकुमार और उनके चाचा सूरजमल घोड़ों को फेंकते हुये, उस ओर बढ़ रहे थे। चारों वीरों ने अपने घोड़ों को पेड़ों से बांध दिया और मन्दिर में प्रवेश किया। देवी की सेविका ने आने का कारण पूछा। पृथ्वीराज ने सारा हाल कह दिया। सेविका ने कुछ न कह कर संग्राम सिंह की ओर हाथ उठा दिया। अब क्या था! पृथ्वीराज म्यान से तलवार खींच कर संग्रामसिंह पर झपटे। युद्ध होने लगा मन्दिर में रुधिर बहने लगा। संग्रामसिंह की एक आंख इसी युद्ध में जाती रही। संग्रामसिंह मन्दिर से निकले और घोड़े पर चढ़ कर चारभुजाजी* की ओर भागे। संग्राम सिंह भागते भागते वीदा नामक राजपूत के घर पहुंचे और उससे सहायता मांगी। वीर वीदा ने राजकुमार को शरण दी, और वह जयमल से युद्ध करके मारा गया। धन्य हो, वीदा! तुम्हारे जैसे वीरों के नाम ही संसार में श्रद्धा और भक्ति से लिये जाते हैं। शरण में आये हुए मनुष्य के लिये जीवन देकर रक्षा करने का पाठ, तुम्हारे जैसे नर-रत्नों ने ही, राजपूत जाति को पढ़ाया है।

संग्रामसिंह बच तो गये, लेकिन वे कहां जाकर रहें, यह बड़ी कठिन समस्या थी। किसी प्रकार छोटी जातिके लोगों में रह

* मेवाड़ का एक तीर्थ स्थान।

कर, वे अपने दिन बिताने लगे। क्या ही अच्छा होता कि पृथ्वीराज और संग्रामसिंह अपनी शक्तियों को इस प्रकार नष्ट न करके, भारतवर्ष की स्वाधीनता को हरण करने वाले मुग़लों से देश को बचाने का प्रयत्न करते; किन्तु, घरेलू फूट ने मेवाड़ की शक्ति को निर्बल बना दिया। संग्राम सिंह कभी गड़रियों के साथ रह कर भेड़ों को चराते, तो कभी किसी के यहां नौकरी करते, इस प्रकार वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

पृथ्वीराज की वीरता के सामने सारा देश कांपता था। उन्होंने लड़ाकू मीनों से घोर युद्ध किया और उन्हें परास्त कर मेवाड़ को सुरक्षित कर दिया। जयमल मारे जा चुके थे। अब, मेवाड़ का राज-सिंहासन प्राप्त करना पृथ्वीराज के लिये बहुत सुगम होगया था। पृथ्वीराज ने तोड़ातंक* के रावजी से, उनकी वीर पुत्री तारा से अपने विवाह की बात चलायी। लेकिन रावजी ने यही उत्तर दिया कि "राजकुमार! जब तक कि तुम तोड़ातंक को मुसलमानों से छीन नहीं लेते, तब तक तारा की आशा न कीजियेगा।" भला, पृथ्वीराज जैसे वीर के लिये यह कौनसी कठिन बात थी! जो बचपन

* राजपूताने में एक छोटा सा राज्य।

से ही, युद्ध करने में सुख पाता हो, जिसका खेल रणक्षेत्र में खड़े होकर युद्ध करना हो, उस वीर के लिये यह प्रसन्नता की बात क्यों न होती ! तारा के साथ अपने चुने हुये पांच सौ वीर राजपूतों की छोटी सी सेना लेकर वह वीर तोड़ातंक पर चढ़ गया । जो साहस राजपूतों ने तोड़ातंक को मुसलमानों से छीनने में दिखलाया वह इतिहास में एक अनोखी बात है। तोड़ातंक जीत लेने पर पृथ्वीराज को बहुत समय तक अपने चाचा सूरजमल से युद्ध करना पड़ा। जब तक उन्हें मेवाड़ के बाहर खदेड़ नहीं दिया, तब तक पृथ्वीराज ने चैन न लिया। सब युद्धों से छुट्टी पाकर, वे राजकुमारी तारा के साथ कुम्भलगढ़* में रहने लगे। किन्तु वे अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सके; उनके बहनोई ने उन्हें विष खिला दिया, जिसके कारण वह अद्भुत वीर इस संसार से चल बसा। यदि पृथ्वीराज अधिक दिन जीवित रहते, और अपने बड़े भाई संग्रामसिंह के साथ रहकर देश की सेवा करते, तो भारतवर्ष का इतिहास ही बदल गया होता। किन्तु, इस देश को तो विजातियों की अधीनता में रहना था, ऐसा कैसे होता ! जब राणा रायमल को यह समाचार मिला कि पृथ्वीराज

* यह मेवाड़ का प्रसिद्ध किला है, और उदयपुर से चालीस मील की दूरी पर एक देखने योग्य स्थान है।

भी मर गये, तो वे अधीर हो उठे । मेवाड़ की लाज अब कौन रख सकेगा, सिसोदिया वंश की लाल पताका चित्तौड़ के किले पर कैसे फहराती रह सकेगी, इसी शोक में उनका भी देहांत होगया । जब संग्रामसिंह को यह समाचार मिला तो वे उदयपुर पहुंचे, और बिना किसी झंझट के वे महाराणा बन गये ।

महाराणा सांगा ने गद्दी पर बैठते ही मेवाड़ में शान्ति स्थापना का प्रयत्न किया ! मेवाड़ का महाराणा उस समय समस्त मध्य भारत का अधीश्वर माना जाता था । घरेलू झगड़ों के कारण जो राजा मेवाड़ की अधीनता से निकल गये थे, उन्हें राणा सांगा ने फिर विजय किया । उस समय महाराणा सांगा की धाक सारे देश में बैठ गयी । जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर, अजमेर, बूंदी, कालपी तथा और भी छोटे छोटे राज्य महाराणा की अधीनता स्वीकार करने लगे ।

जिस समय महाराणा सांगा मेवाड़ राज्य की शक्ति बढ़ा रहे थे, उस समय दिल्ली के सिंहासन पर इब्राहीम-लोदी* और गुजरात तथा मालवा में मुसलमान नवाब राज्य करते थे । मेवाड़ियों को तो मानों भगवान ने स्वतन्त्रता के लिये बलिदान होने को ही उत्पन्न किया था ।

* लोदी वंश का अन्तिम बादशाह ।

थोड़े दिन भी शान्ति से न बीते होंगे कि महाराणा सांगा को गुजरात के सुलतान से युद्ध करना पड़ा। महाराणा सांगा ने वीरवर कानसिंह को अहमदनगर के क़िले पर आक्रमण करने के लिये भेजा। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वीर राजपूत किसी प्रकार क़िले के फाटक के समीप तो पहुँच गये, किन्तु फाटक का तोड़ना सहल नहीं था। उस पर तेज़ कीलें लगी हुई थीं, इस कारण हाथी टक्कर मारने से डरता था। वीरवर कानसिंह ने देखा कि इस तरह क़िला न जीता जा सकेगा। वे हाथी से उतर कर फाटक के सामने खड़े हो गये, और महावत से कहा कि हाथी को बढ़ाओ। हाथी ने धक्का मारा। देखते देखते वीरवर कानसिंह का शरीर भालों से छिद गया लेकिन फाटक भी टूट गया, और राजपूत सेना क़िले में घुसकर युद्ध करने लगी। वीर राजपूत कानसिंह के उस विचित्र बलिदान को देखकर उन्मत्त हो उठे, और उत्साह से युद्ध करने लगे। थोड़ी देर के ही युद्ध में, मुसलमान भाग खड़े हुये, और मेवाड़ का लाल झण्डा क़िले पर फहराने लगा।

महाराणा सांगा इस युद्ध से। निश्चिन्त हुये ही थे कि इब्राहीम लोदी ने एक बहुत बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई की। महाराणा संग्रामसिंह भी मेवाड़ की स्वतन्त्रता

को बचाने के लिये राजपूत सरदारों को लेकर आगे बढ़े। भयंकर युद्ध हुआ। राजपूत लोग अपनी जननी जन्मभूमि की रक्षा के लिये अपने वीर राणा की अधीनता में जूझने लगे। मेवाड़ के इतिहास में देश की स्वतन्त्रता के लिये बहुत से युद्ध हुए, किन्तु यह युद्ध अनोखा था। भारतवर्ष की दो शक्तिशाली जातियां इस युद्ध में जूझ गयीं। तीन घण्टे से अधिक युद्ध न हो पाया था कि दिल्ली की सेना भाग खड़ी हुई, और शाहज़ादा क़ैद हो गया। इस युद्ध में महाराणा सांगा ने वह पराक्रम दिखाया जिसे देखकर राजपूत वीरों का हृदय जोश में भर गया। मेवाड़ की रक्षा हो गयी किन्तु इस युद्ध में महाराणा का बांया हाथ कट गया, और एक पैर में गहरी चोट लगी। धन्य हो, वीर महाराणा! जो राजा अपने देश की स्वतन्त्रता के युद्ध में स्वयं आगे रह कर युद्ध करे, उसकी सेना विजयी क्यों न हो! इब्राहीम लोदी इस अपमान-जनक हार को न भूल सका, और दूसरी बार एक बड़ी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया किन्तु मातृ-भूमि के लिये बलिदान होने वाले वीर मेवाड़ियों के सामने वह सेना कब तक ठहरती! वह शीघ्र हार कर भाग गयी।

इन युद्धों में विजयी होने के कारण महाराणा संग्रामसिंह की धाक अधिकांश भारतवर्ष में बैठ गयी।

परन्तु महाराणा सांगा इन युद्धों से बहुत दिन निश्चिन्त न रह पाये थे कि मालवा के सुलतान ने गुजरात की सेना को साथ लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करदी। यह समाचार सुनते ही महाराणा सांगा पचास हज़ार वीर राजपूतों को लेकर आगे बढ़े। गगनौर के मैदान में दोनों सेनायें भिड़ गयीं। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वीरवर सांगा जानते थे कि गुजरात और मालवे की मिली हुई सेना, मेवाड़ को सदा के लिये दासता की बेड़ियों में जकड़ने आयी है। वह 'यह कैसे देख सकते थे! उन्होंने इस युद्ध में जो पराक्रम दिखाया वह राजपूत जाति के इतिहास में चिर-स्मरणीय है। गुजराती सेना सब की सब मारी गयी। स्वयं महमूद सुलतान बहुत दिनों तक महाराणा का क़ैदी रहा, परन्तु महाराणा सांगा ने कभी उसका अपमान नहीं किया। जो लोग उदार-हृदय होते हैं, वे शत्रु के साथ भी अच्छा व्यवहार करते हैं।

प्रातःकाल का समय था। महमूद राणा साहब से मिलने गया। महाराणा सांगा ने उसको एक सुन्दर गुलदस्ता देना चाहा। लेकिन, महमूद ने कहा "राणाजी मैं आपका क़ैदी हूं, परन्तु फिर भी अपना हाथ पसार कर इस छोटी सी चीज़ के लिये भीख न मांगूंगा।" महाराणा सांगा ने उदारता-पूर्वक कहा "जाओ, महमूद! तुम्हारा आधा राज्य

भी लौटा दूंगा।" महमूद ने वह गुलदस्ता ले लिया और वह मालवे की ओर चला गया। राणा सांगा के इस कार्य की प्रशंसा मुसलमान लेखकों ने भी की है। वास्तव में, उनका यह कार्य उनके उदार-हृदय होने का एक सुन्दर प्रमाण है।

इन सब झंझटों से छुटकारा मिला ही था कि गुजरात के सुलतान ने फिर मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। बात यह थी कि गुजरात का सुलतान अहमदनगर की अपमान-जनक पराजय को भूला न था। उसके हृदय में बदला लेने की अग्नि धधक रही थी, वह चाहता था चित्तौड़गढ़ को मैं उसी प्रकार नष्ट कर दूं, जिस प्रकार मेवाड़ियों ने अहमद-नगर को नष्ट कर दिया है। इस बार गुजरात का सुलतान बड़ी भारी तैयारी करके आया था। उसने सैनिकों को एक वर्ष का वेतन पहिले ही दे दिया था, और चित्तौड़ विजय कर लेने पर उन्हें मनमाना इनाम देने का भी लालच दिया था। इस बार असंख्य मुसलमानी सेना चित्तौड़ को मटियामेट करने के लिये आ धमकी। इस ओर महाराणा सांगा अपने वीर राजपूतों को लेकर स्वतन्त्रता के उस युद्ध के लिये आगे बढ़े। भयंकर युद्ध हुआ। रुधिर की नदियां बहने लगीं। अन्त में विजय राजपूतों के ही हाथ लगी, और उन्होंने गुजरात की सेना को बहुत दूर तक खदेड़ दिया।

सांगा को भारतवर्ष के एक भयंकर शत्रु का और सामना करना था। समरकन्द† का स्वामी बाबर लोदी साम्राज्य की कमज़ोर हालत को देखकर भारतवर्ष में आ चुका था, और दिल्ली का सिंहासन उसके चरण चूम रहा था। बाबर ने धीरे धीरे उत्तरी भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। वह जानता था कि इस देश में उसका सामना करने वाला कोई राजा है तो वह महाराणा ही है। उसे पराक्रमी सांगा की अद्भुत वीरता तथा राजपूतों की बलिदान-शक्ति का ज्ञान था, इसी कारण वह पहिले उत्तर भारत में ही रहा। इब्राहीम लोदी की सेना को हराकर तथा दिल्ली के सिंहासन को छीन लेने के बाद, वह महाराणा सांगा की ओर बढ़ा। उधर, महाराणा सांगा भी समझ गये कि बाबर से जो युद्ध होगा, वह सारे भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का युद्ध होगा। बस, अपने देश-प्रेम से मतवाले राजपूतों को लेकर वे बाबर से लोहा लेने को चल पड़े। बीच के क़िलों को जीतते हुए वे भरतपुर के समीप पहुंचे। बयाना के समीप राजपूतों की मुठभेड़ बाबर की सेना से हो गयी। यह पहला ही अवसर था कि बाबर की सेना ने राजपूतों से युद्ध किया। अंग्रेज़ इतिहास लेखक

† भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम में छोटा सा राज्य।

लेनपूल का कहना है कि देश-प्रेम में मतवाले राजपूतों ने उस युद्ध में अपने प्राणों की परवाह न करके जो वीरता दिखायी, वह बाबर के जंगली सिपाहियों के ध्यान में भी नहीं आ सकती थी। उन्होंने देखा कि राजपूत देश के लिये युद्ध करते हुए मरने में गौरव मानते हैं। बयाना के युद्ध में देखते देखते राजपूतों की तलवारों से बहुत सी मुग़ल सेना कट कर गिर पड़ी, और शेष के पैर उखड़ गये। बाबर के पूछने पर भागे हुये सिपाहियों ने कहा "जहांपनाह! राजपूत बला की क़ौम है। उनसे लड़ना आसान काम नहीं है। हमारे बहादुर सिपाहियों ने न जाने कितने मुल्कों में अपनी तलवार के ज़ोर से झंडा फहराया है, लेकिन राजपूतों के सामने, उन्हीं सिपाहियों के होश उड़ गये। राजपूत लोग अपनी जान को दे देना तो एक खेल समझते हैं।" यह समाचार सुन कर सारी मुग़ल सेना पर भय छा गया, राजपूत लोग उन्हें एक बला के समान दिखायी देने लगे। बाबर भी बहुत डरा, लेकिन वह बहादुर था, और इधर, भारतवर्ष का विशाल साम्राज्य भी उसकी आंखों के सामने घूम रहा था; इस कारण वह लौटना नहीं चाहता था।

राजपूत सेना बिजली के समान क़िलों को लेती हुई चली आरही थी। बाबर उस समय सीकरी* में मोर्चा

*यह आगरे के पास है।

लगा रहा था। उसने अपने एक मुख्य सेनापति को बहुत बड़ी सेना देकर आगे भेजा। महाराणा ने उस पर हमला कर दिया। यह समाचार पाते ही बाबर ने और भी सेना भेजी। महा भयंकर युद्ध हुआ। राजपूतों की वीरता देखकर मुग़ल सेना दंग थी। राजपूत अपनी जान पर खेलकर लड़ने लगे। अन्त में बाबर की सेना तितर-बितर होने लगी, और राजपूतों ने उसका दो मील तक पीछा किया।

इस हार से बाबर की सेना के दिल बैठ गये। वे लोग इतने डर गये कि कोई हिम्मत की बात ही नहीं कहता था। उन्हें तो राजपूत सेना अपनी ओर काल के समान आती दिखायी देती थी। बाबर भी बहुत घबराया हुआ था। जब मनुष्य पर कोई भयंकर आपत्ति आती है, तो वह भगवान को याद करता है। यही दशा बाबर की हुई। उसने यह प्रतिज्ञा की कि आज से मैं कभी शराब नहीं पीउंगा, और न धर्म के विरुद्ध ही कोई कार्य करूंगा। तमाम चांदी के बर्तन, जिनमें शराब रक्खी जाती थी, तोड़ डाले गये, और ग़रीबों को बांट दिये गये। इसके उपरान्त बाबर ने नमाज़ पढ़ी, और खेमे के बाहर आकर अपने सैनिकों से कहा, "सिपाहियो! दुनियां में मरना तो हर एक को है। दुनियां तो एक सराय है, जहां मुसाफ़िर थोड़े ही दिन टिक सकता है। इसलिये बदनाम होकर मरने से इज्ज़त की मौत

मरना कहीं अच्छा है। यदि इस लड़ाई में हम मारे गये, तो आने वाली पीढ़ियां हमारा नाम इज्ज़त के साथ लेंगी, और, यदि हमारी जीत हुई तो इस देश पर हमारा राज्य होगा। इससे, आओ, हममें से हर एक कुरान को हाथ में लेकर यह क़सम खाये कि लड़ाई में पीठ नहीं दिखायेंगे।" इसके बाद सब सिपाहियों ने क़सम खाई।

यद्यपि बाबर की इस चालाकी से सिपाहियों में कुछ जोश बढ़ा, तथापि उसे जीतने की आशा बिलकुल नहीं थी। उसने महाराणा से सन्धि की चर्चा चलायी, लेकिन राजपूत सरदारों ने सन्धि न होने दी। कुछ लोगों का कहना है कि यदि महाराणा सांगा बाबर की उस बुरी दशा को देखकर चुपचाप अपनी सेना लिये हुए सीकरी के मैदान में न पड़े रहते, और घबरायी हुई बाबर की सेना पर पहलेही आक्रमण कर देते, तो इस देश का इतिहास ही पलट जाता। लेकिन उदार-हृदय महाराणा समझते थे कि जो शत्रु बुरी तरह से भयभीत हो रहा हो, उसपर आक्रमण करना शोभा नहीं देता। बस, उन्होंने बाबर को तैयार हो लेने दिया। इस देरी से एक हानि और भी हुई। महाराणा की सेना में लोदी वंश के शाहज़ादे भी मौजूद थे। वे लोग अधिकतर अपने मतलब से राजपूतों के साथ हो गये थे। महाराणा के एक-साथ युद्ध न छेड़ने से बाबर ने इन लोगों को अपनी ओर

मिलाने का प्रयत्न किया और बहुत से स्वार्थी लोग उस से जा मिले ।

चैत सुदी १४ वि० संवत १५८४ के दिन, प्रातः काल दोनों सेनायें सीकरी के मैदान में भिड़ गयीं। महाराणा सांगा हाथी पर बैठकर स्वयं अपनी सेना की देख भाल कर रहे थे। उधर, बाबर ने तोपों को आगे रखकर उनके पीछे अपनी सेना को खड़ा किया था। वीर महाराणा की सेना ने भीषण वेग से बाबर की सेना पर आक्रमण कर दिया। सीकरी के मैदान में धूल छागयी । वीरवर सांगा के तीरों से घायल होकर, शत्रु तड़पने लगे। अपने राणा के इस पराक्रम को देखकर, राजपूत सेना भी भयंकर युद्ध करने लगी । मुग़ल सैनिकों को तो राजपूतों की तलवार के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं दे रहा था। थोड़ी ही देर में मुग़ल सेना घबड़ा उठी । राजपूत सेना ने मुग़ल सेना को दायें और बायें से दबा रक्खा था । जिस फुर्ती से राजपूत युद्ध कर रहे थे, वह तो देखने ही योग्य था। राजपूतों की इस भयंकर मार को शत्रु न सह सके, और उनमें घबराहट फैल गयी। किन्तु, अभाग्यवश उसी समय एक तीर महाराणा के सिर में लगा, जिससे वे मूर्छित होगये। सरदारों ने राणाजी को पालकी में लिटा कर मेवाड़ की ओर भेज दिया। इधर सरदारों को यह चिन्ता हुई कि यदि सेना महाराना को

रणभूमि में न देखेगी तो निराश हो जायगी। सबने सलाह करके झाला अज्जा को महाराणा के हाथी पर बैठने को कहा। वीरवर झाला अज्जा ने महाराणा के हाथी पर बैठ कर सेना का संचालन किया, और, वीरता से लड़ कर जन्म-भूमि के लिये अपने प्राण निछावर कर दिये। धन्य हो, वीरवर! तुम्हारे जैसे नर-रत्नों ने ही भारतमाता का मस्तक ऊंचा किया है। मेवाड़ में आज तक झाला अज्जा के वंशज, सादड़ी के राजा राणा की बड़ी प्रतिष्ठा है। राजपूत सेना के कुछ सरदार विश्वास-घात करके मुग़ल सेना से मिल गये। अब राजपूत सेना बाबर की सेना से घिर गयी, और बाबर की तोपों का शिकार बनने लगी। लेकिन शाबाश है, मेवाड़ियो! तुमने पीठ न दिखायी और जन्म भूमि के लिये बलिदान होगये। बाबर विजयी हुआ, भारत-वर्ष पराधीन होगया।

मूर्छित महाराणा को जब चेत हुआ तो उन्होंने पूछा कि विजय किसकी हुई। युद्ध का सारा हाल जानने पर उन्हें बहुत दुख हुआ। जो राजपूत राणा को उठा लाये थे, उनसे वह बहुत नाराज़ हुये। राणाजी को अपनी उस हार का इतना दुख हुआ कि वे वहीं पर डेरा डालकर, युद्ध की तैयारियां करने लग गये। बहुत से राजपूत राजाओं ने राणा को दूसरी बार युद्ध करने से रोका, किन्तु उन्होंने

जो उत्तर दिया वह उन्हीं के योग्य था। राणा ने कहा कि जब तक मैं बाबर को परास्त करके देश से बाहर नहीं निकाल देता, तब तक चित्तौड़ लौट कर नहीं जाऊंगा। उन्होंने किसी की बात न मानी, और अपनी सेना लेकर बाबर से लड़ने को बूंदी की ओर चले। कुछ सरदारों ने जो कि युद्ध करना नहीं चाहते थे भोजन के साथ महाराणा को विष दे दिया। उस समय के सब से प्रतापी हिन्दू-पति महाराणा सांगा की जीवन-लीला समाप्त होगयी।

महाराणा सांगा सिसोदिया वंश के महान उज्ज्वल रत्न थे, अपने शत्रुओं को शरण देना और उनके राज्य को लौटा देना उन्हीं जैसे उदार वीर का काम था। मेवाड़ राज्य को उन्होंने दिल्ली और गुजरात तक फैला दिया था, महाराणा सांगा के ही सेनापतित्व में, अन्तिम बार सारे राजपूत हिन्दूस्थान से मुसलमानों को निकाल देने के लिये इकट्ठे हुये थे। बाबर ने अपने जीवन चरित्र में महाराणा सांगा की प्रशंसा करते हुए लिखा है "महाराणा सांगा अपनी बहादुरी और तलवार के ज़ोर से ही बढ़ सके थे।" धन्य हो, सांगा! तुम्हारा नाम सुनकर आज भी हृदय में वीरता का संचार होता है।

(८)

पन्ना धाय

निज प्रिय लाल कटाय जो, प्रभु शिशु लियो बचाय।
क्यों न होय मेवाड़ में, पूजित पन्ना धाय॥

— वियोगी हरि

चित्तौड़गढ़ के राजमहल में सन्नाटा छाया हुआ है। कहीं कहीं सैनिकों के चलने की आहट सी आ रही है। रात्रि के बारह बजे हैं। चित्तौड़ निवासी और राजमहल के

रहने वाले सभी गहरी नींद में सो रहे हैं। हां, एक कमरे में दीपक जल रहा है, और पन्ना धाय महाराज-कुँवर उदयसिंह को थपकियां देकर सुलाने का प्रयत्न कर रही है, उसका लड़का भी पास ही सो रहा है।

यकायक एक मनुष्य घबराया हुआ कमरे में घुसा और कहने लगा, "पन्ना सर्वनाश होगया !"

पन्ना—क्या हुआ, भाई ! क्या हुआ ?

मनुष्य—धीरे धीरे बोलो। (फिर धीरे से) बनवीर ने महाराणा जी को मार डाला, और वह राजकुँवर को मारने के लिये आना ही चाहता है।

पन्ना—(घबरा कर) यह कब की बात है ?

मनुष्य—अभी की, अभी की। जब दुष्ट बनवीर ने महाराणाजी को मारा, तभी तो मैं इस ओर भागा।

पन्ना—तब क्या भय्या ! सिसोदिया वंश का नाश हो जायगा, और बनवीर जैसा नीच मनुष्य चित्तौड़ के राजसिंहासन पर बैठेगा ? क्या हम लोगों का यह धर्म नहीं है कि हम अपने प्राण देकर भी कुँवर उदयसिंह को बचावें, और अपने रहते हुये सिसोदिया वंश को नष्ट न होने दें !

मनुष्य—पन्ना यह तो ठीक है कि हमने मेवाड़ राज-घराने का नमक खाया है, उसका बदला यदि हम अपनी जान खोकर भी दे सकें तो हमें देना चाहिये। लेकिन अपने प्राण खोकर भी तो हम लोग कुँवरजी को नहीं बचा सकते, क्योंकि दुष्ट बनवीर तो क्षण भर में ही यहां पहुंच जायगा।

पन्ना—लेकिन सिसोदिया वंश को, जिसके द्वारा पलकर मेरे पुर्वजों ने आनन्द से दिन व्यतीत किये हैं, अपने देखते कैसे नष्ट हो जाने दूं ! अच्छा, अब देर करने से काम न चलेगा। तुम कुँवरजी को छिपाकर पीछे के दरवाज़े से निकल जाओ, और दुर्ग के पिछवाड़े वाले फाटक पर ठहरना; मैं थोड़ी देर में आकर तुमसे मिलूंगी।

मनुष्य—किन्तु इससे भी क्या होगा, बनवीर जब कुँवरजी को यहां नहीं पायेगा तो क्या वह चुपचाप बैठ सकेगा ? उस दशा में क्या हम लोग यहां से बचकर निकल सकेंगे ?

पन्ना—तुम इसकी चिन्ता न करो, मैंने इसका प्रबन्ध सोच लिया है।

मनुष्य—(आश्चर्य से) अच्छा !

पन्ना—अब समय नहीं रहा, दुष्ट बनवीर आता ही होगा। लो, कुँवरजी को छिपाकर निकल जाओ।

इतना कहकर पन्ना ने राजकुँवर उदयसिंह को उस मनुष्य के हाथ में दे दिया, और अपने पुत्र को गोद में उठाकर मुख चूमते हुए कहने लगी "प्यारे बेटा! आज तेरी मां तुझे अपने सामने ही मरवायगी, किन्तु क्या करूं, धर्म भी तो कोई चीज़ है। भगवान्! मुझे वह बल दो, जिससे मैं अपने धर्म पर अटल रह सकूं।" इतने में ही कमरे के बाहर पैर की आहट सुनायी दी। पन्ना ने एक बार फिर पुत्र का मुख चूमा और उसे पलंग पर लिटा कर दीपक बुझा दिया।

बनवीर हाथ में नंगी तलवार लिये, खून से भीगा हुआ, कमरे में आ धमका, और आते ही उसने उत्तेजित स्वर में कहा "धाय! उदयसिंह कहां है? जल्दी बतलाओ।"

पन्ना ने कुछ न कहकर पलंग की ओर उंगली उठा दी। बनवीर ने एक ही हाथ में सोते हुए लड़के की गर्दन काट दी, और कमरे के बाहर हो गया।

पन्ना थोड़ी देर तक रोती रही, फिर, चुपचाप महलों से निकल फाटक के समीप पहुँची, और अपने पुत्र की अन्तिम क्रिया करने के उपरान्त झटपट राजकुँवर उदयसिंह को लेकर भाग चली। भागते समय उसने रोते हुए कहा,

"धन्य हो भगवन्! तुमने मेरे हृदय में इतना बल दिया कि मैं अपने धर्म पर अटल रह सकी।"

धन्य हो, देवी पन्ना! तुम धन्य हो! एक छोटी जाति में जन्म लेकर भी तुमने जो कार्य किया, वह संसार में निराला था। अपने स्वामी के वंश को बचाने के लिये अपने पुत्र को मरवा देना तुम्हारे जैसी माताओं से ही हो सकता है। तभी तो, हम लोग आज तुम्हारा नाम श्रद्धा और भक्ति से लेते हैं।

संसार में बलिदान और त्याग करने वालों की ही पूजा होती है और निर्धन और छोटी जाति का मनुष्य भी संसार में पूजनीय बन सकता है। पन्ना हमें यही पाठ पढ़ाती है। केवल बड़े घराने में जन्म लेने से ही कोई बड़ा नहीं बनता; बड़ा बनने के लिये बड़े काम करने चाहियें। दासी होकर भी आज पन्ना का स्थान इतिहास में बड़े सम्राटों से ऊंचा है।

(१)

वीरवर दुर्गादास

" जननी सुत ऐसो जणैं, जैसो दुर्गादास "

जिस समय सम्राट औरंगज़ेब दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान था, उस समय हिन्दू जाति ने थोड़े से ऐसे देश-भक्त वीरों को उत्पन्न किया जिन्होंने मुग़ल साम्राज्य की नींव को खोखला कर डाला। उन्हीं वीरों में राठौर वीर दुर्गादास थे।

राजपूताने का पश्चिमी भाग मारवाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। जहां देखिये, रेत ही रेत है, कहीं कहीं बबूल के वृक्ष भी दिखायी पड़ते हैं। लहलहाती हुई हरियाली का नाम निशान नहीं, पानी का अकाल, भोजन यहां का ज्वार और बाजरा! फिर भी मारवाड़ ने बहुत से वीरों को उत्पन्न किया। वीर राठौरों की भूमि यही है।

वीरवर दुर्गादास इस मारवाड़ प्रदेश के ही छोटे से जागीरदार थे। मारवाड़ के राज सिंहासन पर उस समय महाराजा यशवन्तसिंह विराजमान थे। औरंगज़ेब उन की वीरता को भली भांति जानता था; जहां मुग़ल साम्राज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न आता, वहीं यशवन्त सिंह जी को युद्ध में भेजा जाता। वैसे तो औरंगज़ेब किसी भी हिन्दू का विश्वास नहीं करता था, परन्तु यशवन्त सिंह की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर वह भयभीत रहने लगा था। उसने देखा कि कहीं ऐसा न हो कि राठौर नरेश अन्य हिन्दू राजाओं को मिलाकर, मुग़ल साम्राज्य की जड़ उखाड़ फैंके। बस, वह महाराज यशवन्त सिंह को मरवाने का उपाय सोचने लगा। इसके सिवाय, औरंगज़ेब की अप्रसन्नता का एक यह भी कारण था कि उसकी ईसाइन बेग़म जोधपुर की महारानी

महामाया से बहुत बिगड़ी हुई थी। वह किसी प्रकार मारवाड़ राजवंश का नाश करवा देना चाहती थी। औरंगज़ेब ने बहुत बार यशवन्तसिंह जी को मरवाने का प्रयत्न किया, किन्तु स्वामि-भक्त राठौर वीरों के पास रहते हुए यह किसकी मजाल थी, कि उनका बाल बांका कर सके!

अन्त में, औरंगज़ेब ने यशवन्तसिंह जी को काबुल पर चढ़ाई करने को भेजा। राठौर नरेश धूर्त औरंगज़ेब के जाल में फँस गये। उन्होंने राज्य-कार्य अपने बड़े लड़के पृथ्वीराज को दे दिया, और स्वयं काबुल की ओर चल दिये। यशवन्तसिंह के पीठ फेरते ही, औरंगज़ेब ने राजकुँवर पृथ्वीराज को दिल्ली बुलवा भेजा, और दरबार में उसे विषैली खिलअत (पोशाक) पहिनाई गयी। बेचारा राजकुमार क्या जानता था कि यह मेरा आदर नहीं हो-रहा है, वरन् मेरा अन्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। थोड़ी ही देर बाद वह बेचारा छटपटा कर मर गया। जब महाराज यशवन्तसिंह को अपने होनहार पुत्र की मृत्यु का समाचार मिला, तो वे अधीर हो उठे और, अफ़ग़ानियों से युद्ध करते करते वह भी मारे गये। राठौर सरदार उस समय क्रोध से उन्मत्त हो रहे थे, किन्तु उस दूर देश में पड़े हुए वे कर ही क्या सकते थे! उनका

राजवंश नष्ट हो चुका था। रानी महामाया उस समय गर्भवती थीं, इस कारण, वीरवर दुर्गादास ने उन्हें सती न होने दिया। कुछ समय के बाद कुमार अजीतसिंह का जन्म हुआ, और निराश राठौर सरदारों के हृदय में फिर से आशा का संचार हुआ। वे अफ़ग़ानिस्तान से लौट आये, किन्तु सम्राट औरंगज़ेब ने रानी महामाया को जोधपुर जाने की आज्ञा नहीं दी। राठौर सरदारों को अब पक्का विश्वास हो गया कि औरंगज़ेब इस बालक को भी मार डालना चाहता है। वीरवर दुर्गादास ने राठौर वीरों से सलाह की और वे अपने छोटे भाई समरसिंह के साथ औरंगज़ेब से मिलने गये।

दीवान ख़ास में बैठे हुए सम्राट औरंगज़ेब ने राठौर वीर दुर्गादास तथा उनके छोटे भाई को बुला भेजा। अकेला पाकर दुर्गादास ने कहा :—

"जहांपनाह ! महाराज यशवन्तसिंह की रानी अब अपने राज्य में रहना चाहती हैं, इसी लिये उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।

औरंगज़ेब — जानता हूं, दुर्गादास ! कि वह जोधपुर जाना चाहती हैं, लेकिन मैं तुम से आज

साफ़ साफ़ कह देना चाहता हूं कि मैं उन्हें जाने देना नहीं चाहता।

दुर्गादास—जहांपनाह! यह तो मैं भी समझता था। तो क्या मेरी प्रार्थना व्यर्थ ही जायगी?

औरंगज़ेब—हां, व्यर्थ ही समझो! लेकिन सुनो, दुर्गादास! मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूं। यदि तुम जोधपुर की रानी और उसके लड़के को मेरे हवाले कर दो, तो मैं तुम्हें जोधपुर का स्वामी बना सकता हूं।

दुर्गादास ने उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया, "जहांपनाह! दुर्गादास इतना नीच नहीं है; वह धन और राज्य को, धर्म के सामने कोई चीज़ नहीं मानता, और अपना कर्तव्य पालन करना जानता है।"

इतना कहकर दुर्गादास शीघ्रता से निकल आये और जोधपुर की कोठी पर पहुंचे। आते ही उन्होंने कुमार अजीतसिंह को एक फलों के टोकरे में रक्खा और उसे क़ासिम नामक अपने मुसलमान नौकर को देकर, कहा कि वह आगरे से बाहर निकल जाय। चलते समय रानी महामाया ने कहा "क़ासिम! तुम्हारे भी धर्म है। तुम भी भगवान को

मानते हो, आज मारवाड़ राजवंश का गौरव तुम्हारे हाथ में है। हो सके तो इसकी रक्षा करना।" क़ासिम ने उत्तर दिया "रानीजी! मेरे जीवित रहते, कुँवरजी का बाल भी बांका नहीं हो सकता।" क़ासिम, कुँवरजी को लेकर शहर से बाहर चला गया।

दुर्गादास ने अपने सब साथियों को इकट्ठा करके कहा, "वीरो! आज का दिन हमारी परीक्षा का दिन है। औरंगज़ेब हमारे स्वामी के वंश को नष्ट कर देना चाहता है। क्या हम लोग अपनी आंखों से मारवाड़ राजवंश को नष्ट होते हुए और जन्म भूमि को परतंत्र होते हुए देखेंगे? यदि तुम लोग ऐसा नहीं चाहते, तो आओ अपने स्वामी के लिये, अपनी मातृभूमि के लिये, बलिदान होने को तैयार हो जाओ। संसार में जिसने जन्म लिया है, उसको मरना अवश्य है। फिर, इस से बढ़ कर और कौनसी गौरवमयी मृत्यु पा सकोगे!" दुर्गादास के रुकते ही सब राठौर वीरों ने कहा कि हम अपने स्वामी और जन्म-भूमि के नाम पर मर मिटने को तैयार हैं। इसके बाद दुर्गादास ने स्त्रियों से कहा, "माताओ और बहिनों! समय बड़ा कठिन है। यदि हम लोग आपकी रक्षा न कर सके तो राठौरों के पवित्र वंश में कलंक लग जायगा। वह देखिये, असंख्य मुग़ल सेना आरही है।" यह सुनते ही एक स्त्री ने आगे बढ़ कर

कहा, सेनापति जी ! आप हमारी चिन्ता न करें हम अपने पवित्र वंश की लाज रखना जानती हैं। सब राठौर स्त्रियां एक कमरे में चली गयीं, बारूद में आग लगा दी गयी, एक भयंकर धड़ाका हुआ और वे सब जल कर भस्म हो गयीं। धन्य हो, देवियो ! धन्य हो ! भारतवर्ष की उस पतित अवस्था में भी, तुम्हारे यह कार्य संसार के इतिहास में बहुत ऊंचे हैं। भला, जो अपनी इज्ज़त को अपनी जान से भी ऊंची समझतीं हों, उनके गर्भ से उत्पन्न होकर राजपूत अपनी आन पर मर मिटने वाले क्यों न होते ! सब कामों से छुट्टी पाकर राठौरों ने केसरिया वस्त्र पहिन लिये, और हाथों में तलवार लेकर रानी महामाया के साथ नीचे उतर आये। मुग़ल सेना फाटक तोड़ रही थी कि यकायक फाटक खुला। जिस प्रकार काले बादलों से घिरे हुए आकाश में बिजली चमक उठती है, उसी प्रकार राठौर वीरों की तलवारें चमक उठीं और देखते देखते सैकड़ों मुग़ल सिपाही गाजर, मूली की तरह काट डाले गये। अब शाही सेना के सेनापति दिलावरखां को होश हुआ। "पकड़ो, जाने न पाये" कह कर उसने युद्ध करने की आज्ञा दी। राठोर वीर भी लड़ने लगे। कैसा भयंकर था, वह युद्ध ! प्राणों का मोह छोड़ कर राठौर वीर लड़ने लगे। वीरवर दुर्गादास की वीरता तो देखने के ही योग्य थी। उनके दोनों हाथों की

तलवारें, हवा के समान घूम रहीं थीं, और, वे शाही सेना को चीरते हुए सब से आगे जा रहे थे। राठौर वीर उस समय तीर की भांति उस विशाल सेना में घुसे और सैकड़ों मुग़ल सैनिकों को काट कर पार हो गये। मुट्ठी-भर राजपूत औरंगज़ेब जैसे प्रबल सम्राट की राजधानी में, उसकी सेना का चीर कर निकल गये, यह कार्य राजपूतों के सिवाय और कौन कर सकता था!

जब औरंगज़ेब को यह समाचार मिला तो वह क्रोध से अधीर हो उठा, और दिलेरख़ां को बुला कर उस से पूछा; "दिलेरख़ां! क्या यह सच है कि जोधपुर की रानी मुट्ठी-भर राजपूतों को लेकर तुम्हारी फ़ौज को कुचलती हुई निकल गयी?"

दिलेरख़ां—जहांपनाह! हां, सच है। मेरी ज़िन्दगी में मुझे तलवार से ही काम पड़ा है। इसी तलवार के भरोसे मैंने सैकड़ों युद्धों में विजय पायी, लेकिन आज का सा युद्ध तो मैं ने कभी देखा ही नहीं। राजपूत जाति बहादुर है, यह मैं बहुत दिनों से जानता हूं। लेकिन, राजपूतों की सच्ची बहादुरी तो आज ही देखने में आयी। थोड़े से राठौर हमारी फ़ौज को इस तेज़ी से काट रहे थे कि मानों उन के सामने कोई है ही नहीं। अब सुना है कि

जोधपुर की रानी महाराणा राजसिंह के पास उदयपुर गयी हैं।

औरंगज़ेब—दिलेरखां! मेवाड़ के लोग भी बला के होते हैं। उनसे लड़ने के लिये बहुत बड़ी फ़ौज का इन्तज़ाम करो। मैं भी इस युद्ध में चलूँगा।

दिलेरखां—जो हुक्म, जहांपनाह!

× × × × ×

उदयपुर के राजमहल में दरबार लगा था। रानी महामाया और दुर्गादास बैठे थे। महाराणा राजसिंह सिंहासन पर विराजमान थे।

दुर्गादास—महाराणाजी! समय का फेर है, मारवाड़ राज्य का आज कोई भी रक्षक नहीं है। जोधपुर के स्वामी राजकुमार अजितसिंह को छिपाये हुए हम लोग अरवली की गुफ़ाओं में पड़े हुये हैं। मारवाड़ में हा-हा-कार मचा हुआ है, मुग़ल सेना हमारे देश को तहस नहस किये डाल रही है, मन्दिरों को तोड़ा जा रहा है, और प्रजा पर अत्याचार हो रहा है। महाराणाजी! मैं ने मारवाड़ राजवंश का नमक खाया है, मार-

वाड़ मेरी जन्म-भूमि है, अपनी आंखों उसकी यह दुर्दशा देखी नहीं जाती । सोचता हूं, एक बार यवन सेना के सामने राठौरों को इकट्ठा करके खड़ा हो जाऊं। लेकिन आज राठौरों के स्वामी के न होने से, वे भी उत्साह-हीन हो रहे हैं। इसी कारण, आपकी सेवा में आया हूं ? क्या मैं यह आशा करूं कि मेवाड़ में आकर मारवाड़ की स्वतंत्रता के लिये भीख मिल सकेगी ? राणाजी ! भारतवर्ष में यदि अपने को मिटाकर स्वतंत्रता देवी की पूजा किसी ने की है तो मेवाड़ ने ही। आज मैं अपनी जन्म-भूमि मारवाड़ के लिये भीख मांगने आया हूं।

इतना कहकर वीरवर दुर्गादास चुप होगये।

राजसिंह—राठौर वीर दुर्गादास ! तुम जैसे माता के सेवक होते हुये, तुम्हारी जन्म-भूमि पराधीन नहीं रह सकती। यह अवश्य स्वतंत्र होगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मेवाड़ अपनी सारी शक्ति लगा कर भी मारवाड़ को स्वतंत्र कराने में सहायता देगा।

दुर्गादास—जय हो, महाराणा जी की जय हो ! हमें उदयपुर के महाराणा से यही आशा थी

राजसिंह—जब औरंगज़ेब मारवाड़ राजवंश को नष्ट कर देना चाहता है, तो हम लोगों को भी युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये; क्योंकि औरंगज़ेब चुप बैठने वाला मनुष्य नहीं है। मैं अपने सरदारों और कुँअर भीमसिंह को शीघ्र ही उदयपुर बुलवाता हूं। आप भी राठौरों को लेकर शीघ्र आइये।

दुर्गादास—महाराणाजी ! मैंने अपने छोटे भाई को मारवाड़ भेज दिया है, शीघ्रं ही राठौरों की सेना उदयपुर आ जायगी।

× × × ×

उदयपुर से सात मील दूर, देवारी के स्थान में असंख्य सेना पड़ी हुई थी। औरंगज़ेब, दिलेरख़ां, तथा दोनों शाहज़ादे अपनी अपनी सेना की देख भाल कर रहे थे। दूसरी ओर राठौर वीर दुर्गादास और कुँअर भीमसिंह अपनी अपनी सेना को जमा रहे थे। दिन में कोई युद्ध नहीं हुआ, रात्रि को वीरवर दुर्गादास ने राजपूतों को इकट्ठा करके कहा, "वीरो ! आज यवन सेना मेवाड़ और मारवाड़ को दासता की बेड़ियों में जकड़ने के लिये आयी हुई है। जो मेवाड़ सैकड़ों वर्षों से अपनी स्वतंत्रता को, अपने वीरों का बलिदान करके, सुरक्षित रक्खे हुए है, जिस मेवाड़ की लाल ध्वजा शान के साथ फहराती है, जिसके पुत्रों ने अपने को बलि-

दान करके भी इस पवित्र वंश की आन को रक्खा है, क्या उसी मेवाड़ को यवन सेना, तुम्हारे रहते हुये, पैरों तले रौंदेगी ? और, ऐ राठौरो ! तुम्हारा तो यवनों ने सर्वनाश कर दिया है। जो तुम्हारे स्वामी को मरवा कर उनके पुत्र को भी मारना चाहते हों, और जिन्होंने तुम्हारे देश को विध्वंस कर डाला हो, उन यवनों से देश को बचाने का इससे अच्छा अवसर और कौन सा मिल सकता है ! मरना तो सब को है। यदि इस समय अपनी जान बचाने के लिये हम युद्ध से हट गये तो हमारी संतान हमारा नाम घृणा के साथ लिया करेगी। इससे, आओ ! हम सब आज इन यवनों को बतला दें कि हम स्वतंत्रता को रखना चाहते हैं।"

इन शब्दों को सुनते ही राजपूतों में बिजली सी दौड़ गयी और हज़ारों तलवारें उस अन्धकार में चमचमा उठीं। सेनापति दुर्गादास ने सेना के दो भाग किये; एक अपनी अधीनता में रखा, और दूसरा भीमसिंह की में। थोड़ी ही देर में दोनों सेनाओं ने यवन सेना पर धावा बोल दिया। राजपूत वीर यवन सेना पर टूट पड़े। दोनों ओर से भयंकर युद्ध हुआ। राजपूत सैनिक अपने देश पर निछावर होने को ही आये थे; तनख़ाह पाने वाले यवन सैनिक उनके सामने कैसे ठहरते ! तिसपर दुर्गादास तो हवा की भांति, एक स्थान से दूसरे स्थान पर, युद्ध करते दिखायी देते थे। राजपूत लोग

अपने सेनापति को इस तरह भयंकर युद्ध करते देखकर और भी जोश से लड़ने लगे। उधर कुंवर भीमसिंह की अधीनता में मेवाड़ के वीर यवन सेना को रौंद रहे थे। सम्राट औरंगज़ेब और दिलेरख़ां आपस में बात चीत कर रहे थे।

दिलेरख़ां:—देखा, जनाब! राजपूतों की बहादुरी को देखा? बला की है यह क़ौम! अपनी जान को तिनके के बराबर भी यह लोग नहीं समझते। मुट्ठी भर राजपूत सेना बेहिसाब शाही फ़ौज को खदेड़ रही है।

औरंगज़ेब:—ठीक है दिलेरख़ां,! दुनियां में बहादुरी तो इसी क़ौम के हिस्से में पड़ी है। अगर इन लोगों में मेल होता तो हिन्दोस्तान ही क्या, दुनियां की सब रियासतें इनके आगे सर झुकातीं! वह देखो हमारी फ़ौज भाग रही है। जाओ, बेग़मों को लेकर, बच निकलने की कोशिश करो।

× × × ×

पर्वत की चट्टान पर दुर्गादास, कुँवर भीमसिंह, और महाराणा राजसिंह बैठे हैं।

दुर्गादास:—महाराणा जी! कल मेरे हृदय में एक नया भाव उत्पन्न हुआ। जब मैंने देखा कि मेवाड़ और

मारवाड़ की सेना असंख्य शाही सेना को भगा रही है, तो मैंने सोचा कि एक बार तमाम राजपूतों को इकट्ठा करके मुग़लों का सामना क्यों न किया जाय ! मैंने देखा कि भारतवर्ष की स्वतंत्रता का प्रश्न अभी बिलकुल जाता नहीं रहा। हिन्दुओं में शक्ति है, बल है, केवल एकता की कमी है।

राजसिंह—ठीक है दुर्गादास ! राजपूतों की भुजाओं में बल है, लेकिन हमारे हृदय दास होगये हैं। यदि आज सब राजपूत राजा मिल जांय, तो भारतवर्ष में ही क्या, दुनियां में हमारी विजय पताका फहरा सकती है। यदि ऐसा हो भी गया, तो प्रश्न यह होगा कि भारतवर्ष का सम्राट कौन बने।

दुर्गादास—मेरी समझ में तो उदयपुर महाराणा की अधीनता स्वीकार करने में किसी को आपत्ति न होनी चाहिये।

राजसिंह—दुर्गादास ! यह तुम्हारी भूल है । यदि आज मैं दिल्ली के सिंहासन को छीनने का प्रयत्न करूं तो जयपुर, जोधपुर, बूंदी तथा और रजवाड़े मुसलमानों का साथ देंगे। राजपूतों में यही तो भारी

दोष है कि वे विजातियों की दासता में रह सकते हैं, किन्तु अपने भाई की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते।

दुर्गादास—लेकिन, एक बार प्रयत्न करने में क्या हानि है, राणाजी !

राजसिंह—दुर्गादास ! इसमें हानि यह होगी कि यदि मेवाड़ मुग़लों को हिन्दुस्थान से निकालने का प्रयत्न करेगा तो अपनी स्वतंत्रता से भी हाथ धो बैठेगा। यह छोटा सा राज्य किसी प्रकार अपनी स्वतंत्रता को बनाये हुए है ! इससे कुछ अधिक करना मेवाड़ के लिये कठिन है।

भीमसिंह—वीरवर दुर्गादास ! हिन्दू जाति के भाग्य में स्वतंत्रता का आनन्द भोगना अब नहीं रहा। अच्छा, यह बातें तो फिर होंगी; अब युद्ध के विषय में विचार कर लीजिये।

राजसिंह—अब हमको भय नहीं है; सालूम्बर नरेश, बिदनौर के ठाकुर साहिब, तथा और भी सामन्त आगये हैं। इस बार तो मेवाड़ औरंगज़ेब को यह दिखला देगा कि संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी इस छोटे से प्रदेश को परतंत्र नहीं बना सकती।

× × ×

दुर्गादास ने दूसरी बार फिर औरंगज़ेब को युद्ध में हराया। इस युद्ध में तो शाही बेग़में भी छिन गयीं। किन्तु, महाराणा राजसिंह ने उन्हें इज्ज़त के साथ औरंगज़ेब के पास भेज दिया। औरंगज़ेब भी इस बार-बार-की पराजय से घबरा गया था। उसने महाराणा राजसिंह से तथा जोधपुर के सेनापति दुर्गादास से सन्धि कर ली। वीरवर दुर्गादास ने राज्य का काम संभाला, और कुँवर अजीतसिंह के बड़े होने पर उन्हें सिंहासन पर बैठा दिया।

आज वीरवर दुर्गादास संसार में नहीं हैं। लेकिन उनके उज्ज्वल कार्य इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखे जाने योग्य हैं। संसार उसी के सामने श्रद्धा और भक्ति के साथ सिर नवाता है, जो अच्छे कार्य करता है। दुर्गादास यदि चाहते तो जोधपुर के राजा बन जाते, किन्तु उस वीर ने कष्ट सहकर भी अपने स्वामी तथा जन्म-भूमि की सेवा से मुख न मोड़ा। कुछ वर्षों से जोधपुर में दुर्गादास की जयन्ती मनाई जाती है। यह जयन्ती प्रति वर्ष श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को होती है। क्या ही अच्छा हो, यदि जोधपुर में उस वीर का अच्छा सा स्मारक बनवाया जाय।

(१०)

वीरवर जयमल-फत्ता

भारतवर्ष में चित्तौड़गढ़ का नाम अजर अमर है, और उसके साथ ही मेवाड़ियों की भी कीर्ति अमर है । उदयपुर से पैंसठ मील की दूरी पर, चित्तौड़गढ़ जंकशन से लगभग दो मील हटकर, एक विशाल चौरस मैदान है। उसी, कोसों लम्बे चौड़े मैदान के बीच में, एक बहुत बड़ी पहाड़ी अपना मस्तक ऊंचा किये खड़ी है, वही तो चित्तौड़गढ़ है। चित्तौड़

का नाम लेते ही हृदय में शक्ति का संचार होता है, कायर मनुष्य में भी एक बार साहस उत्पन्न होता है । जिन लोगों को इस पवित्र भूमि के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे जानते हैं कि चित्तौड़गढ़ के खंडहरों में खड़े होने पर हृदय में कैसी कैसी भावनायें उठती हैं। हमने तो उन खंडहरों में खड़े होकर बहुत बार अनुभव किया है कि वे प्राचीन खंडहर प्रत्येक यात्री से, दुख भरे शब्दा में कहते हैं, "ऐ अभागे यात्रियो! जाओ, हमारी शान्ति में बाधा क्यों डालते हो! हमारे आंगन में तो केवल ऐसे वीर ही खेल कूद कर बड़े होते थे, जो अपनी इज़्ज़त को अपनी जान देकर भी रखना जानते थे । किन्तु आज उन्हीं वीरों की सन्तान अपमानित होकर, अपमान करने वालों की चापलूसी में ही अहोभाग्य मानती है। ओह ! कैसा दारुण पतन है। जाओ, ऐ यात्री ! यहां से शीघ्रता-पूर्वक चले जाओ। नहीं तो, तुम जैसे कुपुत्रों को देखकर हमारी व्यथा और भी बढ़ जायगी।" चित्तौर पर प्रत्येक पत्थर से यही ध्वनि निकलती प्रतीत होती है।

वीरवर जयमल और फत्ता इसी चित्तौड़ के दो अनमोल रत्न थे। इन्हीं दोनों वीरों ने अकबर जैसे सम्राट

के छक्के छुटा दिये थे। यही कारण है, आज भी इन दोनों वीरों का नाम श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है।

वीरवर जयमल मेड़तिया वंश के राठौर थे। इनका जन्म मेड़ते में हुआ था। अपने पिता के सब से बड़े लड़के होने के कारण, वे ही जागीर के मालिक हुए। जब अकबर दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठा तो उसने राजपूतों को अपनी अधीनता में लाने का प्रयत्न किया। जयमल जैसे स्वतन्त्रता-प्रिय राजपूतों को वह कैसे छोड़ सकता था! थोड़े ही दिनों के बाद मेंढ़ते पर भी मुग़ल सेना आ पहुँची। वीर जयमल भी अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिये तैयार हो गये। देखते देखते मेढ़ते का दुर्ग चारों ओर से घेर लिया गया। वीरवर जयमल ने युद्ध आरम्भ कर दिया। भीषण युद्ध हुआ। बहुत दिनों तक तो राजपूतों ने मुग़ल सेना को एक इंच भी आगे न बढ़ने दिया, किन्तु असंख्य मुग़ल सेना के सामने मुट्ठी-भर राजपूत कब तक लड़ सकते थे! जब कोई उपाय दिखायी न दिया तो वीर सेनापति देवीदास ने क़िले के फाटक खोल दिये, और बड़ी बहादुरी के साथ लड़ते हुए वे रण भूमि में सदा के लिये सो गये। वीरवर जयमल लाचार होकर, अपने पूर्वजों के जन्म-स्थान को अन्तिम बार नमस्कार कर, चित्तौड़ चले

आये। महाराणा उदयसिंह ने उन्हें आदर-पूर्वक अपने यहां रख लिया।

वीरवर फत्ता सिसोदिया वंश के चन्दावत कुल में उत्पन्न हुए। उमर में बहुत छोटे होते हुए भी, पिता के मर जाने से, यह केलवाड़ा की गद्दी के स्वामी हुए। इनका पुरा नाम प्रतापसिंह था किन्तु लोग इन्हें पत्ता या फत्ता कहते हैं। छोटेपन से ही वीरवर फत्ता शान्ति-प्रिय थे। इनके वंश के और जागरिदार कहा करते थे कि आगे चल कर वीरवर फत्ता केलवाड़ा राजवंश का नाम उज्ज्वल करेंगे। वास्तव में हुआ भी यही। वीरवर फत्ता ने मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिये अपने को निछावर कर दिया।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अकबर राजपूतों को अपने अधीन करना चाहता था, और वह यह भी जानता था कि जब तक राजपूत जाति उसकी अधीनता को स्वीकार नहीं कर लेती, तब तक मुग़ल राज्य की नींव मजबूत न होगी। इसी कारण, उसने राजपूतों को अपने अधीन किया। परन्तु मेवाड़ पराधीनता कैसे स्वीकार करता! अकबर मेवाड़ विजय करने के लिये एक बहुत बड़ी सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ आया। महाराणा उदयसिंह को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने सब सरदारों क

बुला भेजा। सब सरदार अपने वीर राजपूतों को लेकर चित्तौड़ पर आ जमे। सब की यह राय हुई कि महाराणा को दुर्ग पर न रहना चाहिये, क्यों कि मेवाड़ की शक्ति अधिक युद्ध करने से कम हो गयी है। बस, महाराणा उदयसिंह तो चित्तौड़ से उदयपुर की ओर चले गये, और वीरवर जयमल मेवाड़ की सेना के सेनापति चुने गये। जयमल की वीरता पर सब को भरोसा था। दूसरे ही दिन, जयमल ने सब सरदारों और राजपूतों को इकट्ठा करके कहा, "भाइयो! आज मेवाड़ पर भयंकर आपत्ति आयी है। अकबर हमारी मातृ-भूमि को परतंत्र बना डालना चाहता है, क्या तुम्हारे रहते हुए तुम्हारा यह प्रचीन दुर्ग मुग़लों के हाथ में चला जायगा, क्या तुम्हारे देखते हुए मेवाड़ की यह लाल ध्वजा उखाड़ फैंकी जायगी? हम माता के पुत्र, क्या इस समय भी माता के काम न आवेंगे? मुझे भरोसा है कि हम में से प्रत्येक राजपूत अपनी जन्मभूमि की स्वतंत्रता के लिये प्राण निछावर करने को तैयार है। आओ, हम सभी माता के लिये अपने को बलिदान करें।" सब सरदारों ने जोश-भरे शब्दों में अपने सेनापति की बात का समर्थन किया।

वीरवर जयमल युद्ध की तैयारियां करने लगे। चित्तौड़-गढ़ के परकोटे पर वीर राजपूत जम गये। उधर, अकबर भी अपनी असंख्य सेना से, क़िले को घेरने लगा। वीरवर

जयमल ने कीर्तिस्तम्भ† पर चढ़ कर देखा कि विशाल मुग़ल सेना गंभीरी नदी के समीप, टिड्डी दल की भांति मंडरा रही है। उन्होंने मन में कहा कि यह तो भगवान जानते हैं कि विजय किसकी होगी, किन्तु हम अकबर को यह अवश्य बतला देंगे कि मेवाड़ की ध्वजा एक भी राजपूत के जीवित रहते झुकायी नहीं जा सकती।

अकबर की सेना ने चारों ओर से तोपों के द्वारा गोले बरसाना आरम्भ कर दिया। प्रातः काल से सायंकाल तक चित्तौड़ पर गोले बरसते रहते, किन्तु चित्तौड़गढ़ मानों उन आघातों की कुछ परवाह ही नहीं करता था। महीनों तक गोले बरसाने पर भी अकबर की सेना कुछ न कर सकी, वीर राजपूत अपनी मातृ-भूमि के बैरियों को अपने तीर और गोलियों का निशाना बनाते रहे। वीर राजपूत रमणियां भी चुपचाप नहीं थीं; वे झुंड की झुंड इकट्ठी होकर, तीरों की मार से मुग़ल सेना का नाश कर रही थीं। धन्य हो, देवियो! तुम्हारे यह कार्य स्वतंत्रता के इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखे जाने योग्य हैं। क्या जन्मभूमि के ऐसे आड़े समय में, माता की पुत्रियों को अपने चूल्हे और चक्की में ही लगे रहना चाहिये? इसका कैसा अच्छा उत्तर तुमने अपने उदाहरण से दे दिया है। जब देश की स्वतंत्रता का

† इसे महाराणा कुम्भा ने, मालवा विजय करने के बाद, बनवाया था।

प्रश्न उपस्थित हो, तब उसके प्रत्येक पुत्र और पुत्री का यह कर्तव्य है कि वह अपने को बलिदान करने के लिये तैयार होजाय ।

सेनापति जयमल को तो युद्ध के सिवाय और कुछ दिखायी ही न देता था। दिन भर तो वे घोड़े पर बैठे हुए उस विशाल दुर्ग पर घूम घूम कर वीर राजपूतों को उत्साहित करते, और रात्रि को जहां कहीं दीवार कमज़ोर हो जाती, उसे बनवाते। वीरवर जयमल की इस सावधानी के कारण, अकबर की कोई भी युक्ति सफल नहीं हुई। अब तोपों का मोर्चा लगाकर, उनकी रक्षा से सुरंग खोदने का काम प्रारम्भ किया गया। किन्तु वीरवर जयमल ने इस भीम वेग से मुग़ल सेना पर आक्रमण किया कि असंख्य मुग़ल सैनिक मारे गये। मुसलमान लेखकों का कहना है कि राजपूतों के हमले से इतने सिपाही मारे गये कि लाशें ईंट पत्थर की तरह चुन गयीं।

मुग़ल सेना में मनुष्यों की कमी नहीं थी। मरे हुये सिपाहियों की जगह और सिपाही आजाते थे, इस प्रकार, बहुत सी मुग़ल सेना सुरंग खोदते समय मारी गयी। अन्त में सुरंग तैयार हो गयीं। मुग़ल सेना ने उनमें बारूद भर कर उन्हें उड़ा दिया। देखते देखते धड़ाके के साथ, सुरंगें फटीं और बहुत से स्थानों पर क़िले की दीवार टूट गयी। अकबर ने सोचा कि अब चित्तौड़ हाथ आगया। मुग़लसेना हर्ष-पूर्वक टूटे

स्थानों की ओर बढ़ी। लेकिन जयमल यों ही क़िला दे देने वाले नहीं थे। वह उन स्थानों पर राजपूत सैनिकों की दीवाल बना कर खड़े थे। शत्रुओं के, पास आते ही हज़ारों म्यानों से तलवारें निकल आयीं।

वीर फत्ता भी अपने राजपूतों को लिये हुए खड़े थे। शाही सेना यह समझ कर कि विजय समीप है, उत्साह से लड़ रही थी। उधर, राजपूत अपने जीते जी एक भी आदमी को क़िले में न घुसने देने का प्रण किये हुए थे। वीरवर जयमल, फत्ता और साईंदास की तलवारें तो मुग़ल सेना को प्रलय-काल के समान काट रही थीं। देखते देखते राजपूतों ने बहुत सी मुग़ल सेना को मार गिराया। फिर भी असंख्य शाही सेना में विशेष कमी न होती थी। यह भयंकर युद्ध दो रात्रि और एक दिन लगातार होता रहा। राजपूतों की वीरता को देखकर अकबर चकित हो गया। उसने बहुत से युद्ध किये थे, लेकिन, यह बहादुरी कहीं देखने में न आयी थी। टूटे हुए स्थानों पर अपनी छाती को लगाये हुए राजपूत, अपने सेनापति जयमल और फत्ता की आज्ञा से, भीषण युद्ध कर रहे थे। अन्त में मुग़ल सेना पीछे हट गई, दोनों ओर के थके हुए सैनिक विश्राम लेने लगे, परन्तु वीरवरों को भला चैन कहां ! वे परकोटे पर खड़े हुए दीवाल को बनवा रहे थे। रात्रि का समय था,

अकबर ने बन्दूक़ से जयमल पर निशाना लगाया। वीरवर जयमल के गोली लगने से उनकी एक टांग टूट गयी। तथापि, दुर्ग फिर सुरक्षित हो गया। अकबर अपनी इस हार पर बहुत लज्जित हुआ, लेकिन उसने घेरा न उठाया। उधर, क़िले में भोजन की सामग्री कम होने लगी। जब भोजन बिलकुल समाप्त होगया तो सेनापति जयमल ने आज्ञा दे दी कि कल क़िले का फाटक खोल दिया जावेगा; स्त्रियों को जौहर करके, और पुरुषों को रणभूमि में बहादुरी के साथ लड़ कर, मरना चाहिये। सब ने बड़े हर्ष पूर्वक वह आज्ञा सुनी। वह रात चित्तौड़-वासियों के लिये अन्तिम थी। हर एक अपने मित्रों और कुटुम्बियों से गले मिल रहा था। कैसा स्वर्गीय था, वह दृश्य! "मातृ भूमि हमारे सामने पद-दलित हो, और हम लोग ज़िन्दा रहकर उसका अपमान देखें, यह महान कायरता है; इससे तो युद्ध में मर जाने में बहुत गौरव है।" प्रत्येक राजपूत के मुख से ऊपर लिखे हुए शब्द निकल रहे थे।

प्रातःकाल हुआ, शाही सेना क़िले की ओर बढ़ी। अकबर ने चित्तौड़ पर अग्नि की लपट देखीं। क्षत्राणियों ने अपने वंश की लाज रखने के लिये अपने को भस्म कर लिया। सारे राजपूत अपनी माताओं और बहिनों का वह बलिदान देख रहे थे। जब सा चितायें धधक उठीं तो

जयमल ने कहा " जाओ माताओ और बहिनो ! जाओ, तुमने देश, जाति और वंश के प्रति अपना कर्तव्य निबाह दिया। स्वर्ग से देखना कि तुम्हारे बेटे और भाई भी अपना कर्तव्य निबाहना जानते हैं।" फिर उन्होंने राजपूत सरदारों से कहा " चलो, भाई ! चलो, हम भी अपना कर्तव्य पालन करें। केसरिया बाने की लाज तुम्हारे हाथ में है। किन्तु खेद है कि मैं घोड़े पर न चढ़ पाऊंगा और न युद्ध ही कर सकूंगा। भला, मुझसा अभागा भी कोई होगा?" इस पर वीर कल्ला ने कहा कि आप मेरे कन्धों पर बैठकर लड़ने की इच्छा पूरी करें।

वीर जयमल कल्ला के कन्धों पर बैठ गये। चित्तौड़ का फाटक यकायक खुला और वीर राजपूत मुग़ल सैनिकों पर झपटे। जिस प्रकार भूखा शेर हाथियों के झुण्ड को फाड़ डालता है; उसी प्रकार राजपूत शाही सेना को मारने लगे। वीरवर जयमल और फत्ता तो मानों काल का रूप धारण किये हुए थे। वे कल्ला के कन्धों पर बैठे हुए दोनों हाथों में तलवार लेकर यवन सेना को काटने लगे। दूसरी ओर वीरवर फत्ता तथा और सरदार अपना पराक्रम दिखा रहे थे। जो भला मरने के ही इरादे से आये हों, उनके सामने साधारण मनुष्य कैसे टिक सकता है! शाही सेना समुद्र के समान उफन कर चित्तौड़ में घुसने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु राजपूत तो पीछे पैर रखना जानते ही नहीं थे। भीम वेग से वीरवर

फत्ता ने चन्द्रावत वीरों को लेकर आक्रमण किया । देखते देखते हज़ारों मुग़ल सैनिक रणभूमि की धूल फांकने लगे। शाही सेना थर्रा गई, मुट्ठी भर राजपूतों के सामने वह खड़ी न रह सकी और मैदान छोड़कर भाग निकली । सम्राट् अकबर ने सैकड़ों मस्त हाथियों को सूंड में तलवार देकर आगे बढ़ाया। लेकिन, धन्य हो वीरवर फत्ता ! तुमने बहुत से हाथियों की सूंड़ों को काट कर उन्हें भगा दिया । फिर भी थोड़े से राजपूत असंख्य सेना से कब तक लड़ सकते थे ! धीरे धीरे सारे राजपूत जन्म-भूमि के नाम पर मर मिटे। धन्य हो वीरो ! तुम्हारा जीवन सार्थक है, तभी तो हमारा मस्तक तुम्हारे लिये श्रद्धा-पूर्वक झुकता है । वह दिन चित्तौड़ के इतिहास में नहीं, संसार के इतिहास में अनोखा था। अकबर राजपूतों की देश-भक्ति देखकर दंग था ।

अभिमान-पूर्वक अकबर चित्तौड़ में घुसा, किन्तु चित्तौड़ का कोई भी निवासी सम्राट के सामने झुकने के लिये बचा हुआ न था । चित्तौड़ पर मुग़लों का झण्डा फहराने लगा, परन्तु उसके नीचे खड़ा होने वाला कोई भी राजपूत न था। अकबर ने देखा कि वह विशाल दुर्ग मानों श्मशान बना हुआ है । महीनों के युद्ध के उपरान्त जब चित्तौड़ उसके हाथ में आया, तब उसका कोई महत्व न था। अकेला अकबर अपने सरदारों के साथ

उस किले पर घूमने लगा। कुछ समय तक वह चुपचाप रहा। अन्त में, वह टोडरमल से कहने लगा "राजा साहिब! आपकी जाति ग़ज़ब की बहादुर है। ऐसी बहादुरी दुनिया की किसी दूसरी क़ौम में मिलना कठिन है। चित्तौड़ को जीत कर भी मैं हारा हुआ हूं, क्योंकि एक भी चित्तौड़ निवासी मेरी जीत को देखने वाला नहीं है। जयमल और फत्ता की बहादुरी तो देखते ही बनती थी!" इतिहास जानने वालों को ज्ञात होगा कि सम्राट अकबर ने सब राजपूतों को हिन्दू रीति के अनुसार फुंकवाया और दिल्ली जाकर उसने जयमल और फत्ता की दो बड़ी मूर्तियां किले के दोनों ओर स्थापित कीं। क्यों न हो, सच्ची बहादुरी की प्रशंसा तो शत्रु भी करता है।

चित्तौड़ के दुर्ग पर आज भी जयमल और फत्ता के मकानों के खंडहर खड़े हुए हैं। वहां जाते ही इन दोनों वीरों की अद्भुत वीरता का स्मरण हो आता है। इन खंडहरों के सामने ही जयमल और फत्ता के तालाब हैं। खंडहर ऐसी बुरी दशा में है कि यदि कुछ दिनों तक उनकी ओर ध्यान न दिया गया तो उनका चिन्ह भी न रहेगा। क्या मेवाड़ राज्य इन खंडहरों को ठीक करवाने का प्रयत्न करेगा? लेखक ने बहुत बार इन खंडहरों की शिलाओं पर बैठकर विचारा है कि ऐ अभागी राजपूत जाति! इस तेरे

पतन का कोई ठिकाना है ! क्या कोई एक क्षण के लिये भी यह विश्वास कर सकता है कि हम इन्हीं वीरों के वंशज हैं ? इन खंडहरों को देखने से हृदय में वीर भावों का संचार होता है। हमारी, पाठकों से यह प्रार्थना है कि वीर भूमि चित्तौड़ को एक बार अवश्य देखें। चित्तौड़ और हल्दी घाटी प्रत्येक देश-प्रेमी के लिये तीर्थ स्थान हैं।

आज भी वीरवर जयमल के वंशज बिदनौर राज्य के स्वामी हैं, और वीरवर फत्ता के वंशज केलवा की गद्दी पर विराजमान हैं। क्या ही अच्छा हो कि मेवाड़ के यह दोनों सरदार अपने यहां, अपने प्रसिद्ध पूर्वजों का स्मारक बनवायें, जिससे राजपूतों के हृदय में फिरसे वीरता का संचार हो।

वीरवर जयमल-फत्ता साधारण से जागीरदार होकर क्यों पूजनीय हैं ? उनका त्याग बड़ा है। संसार में इन दोनों वीरों का नाम सदा के लिये अमर है। दुनिया में अधिकतर छोटे आदमी ही बड़े काम किया करते हैं।

* हरि ओ३म *

राष्ट्रीय विद्यालयों, तथा सरकारी स्कूलों में प्रचलित, पाठ्य पुस्तकों, पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये विशेष उपयोगी

भारतीय ग्रन्थ माला,
वृन्दावन

"प्रत्येक देश-प्रेमी को इस माला की पुस्तकें अपनाकर, इसके व्यवस्थापक को सत्साहित्य की वृद्धि के लिये उत्साहित करना चाहिये"।

—सैनिक

It is the duty of every Hindi-knowing citizen to help the author, in the pioneer work that he is doing.

— The Education.

१ भारतीय शासन Indian Administration—"राजनैतिक ज्ञान के लिये आइने का काम देने वाली", और "विद्यार्थियों, पत्र-सम्पादकों और पाठकों के बड़े काम की"। छटा संस्करण; मूल्य ॥।=)

२ भारतीय विद्यार्थी विनोद—भाषा, विज्ञान, इतिहास आदि दस पाठ्य विषयों की आलोचना, और मातृ-भाषा जीवन का लक्ष्य आदि ग्यारह विचारणीय विषयों की विवेचना। "नये ढंग की रचना।" तीसरा संस्करण; मूल्य ॥)

३ भारतीय राष्ट्र निर्माण Indian Nation Building—राष्ट्रीय समस्याओं का "बहुत ही योग्यता और स्वतंत्रता से विचार किया गया है।" दूसरा संस्करण। मूल्य ॥।=)

४ भावना—(ले०-श्री स्वामी आनन्दभिक्षुजी सरस्वती) कल्याण-पथ की प्रदर्शिका। गद्य काव्य। स्फूर्ति का संचार

करने वाली। नवयुवकों के लिये विशेष उपयोगी, ओजस्वी रचना। मूल्य ।||=)

५—सरल भारतीय शासन—साधारण योग्यता वालों के लिये, राज-प्रबन्ध के ज्ञान की अत्युपयोगी पुस्तक। मूल्य ||)

६—भारतीय जागृति—Indian Awakening — गत सौ वर्षों का धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक आदि इतिहास। मूल्य १)

७—विश्व वेदना—मानव समाज के भिन्न भिन्न पीड़ित अंग—मज़दूर, किसान, लेखक, बच्चे, विधवायें, वेश्यायें, क़ैदी और अनाथ आदि अपनी अपनी वेदना बता रहे हैं। उनकी व्यथा सुनिये। कष्ट पीड़ितों की वेदना के निवारण के विषय में भी विचार किया गया है। मूल्य ।||=)

८—भारतीय चिन्तन—राजनैतिक, अन्तराष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आदि विषयों का मनोहर वर्णन। सरस निबन्ध। मूल्य ।||=)

९—भारतीय राजस्व Indian Finance—दो सौ करोड़ रुपये के वार्षिक सरकारी आय-व्यय का ज्ञान प्राप्त कर, आर्थिक स्वराज्य प्राप्त कीजिये। मूल्य ।||=)

१०—निर्वाचन नियम Election Guide (ले०—श्री० दयाशंकर जी दुबे एम० ए०, और भगवानदास केला)—व्यवस्थापक संस्थाओं, म्यूनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों के निर्वाचकों और उम्मेदवारों के लिये अत्युपयोगी। मूल्य ||-)

११–बालब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—एक आधुनिक आदर्श महिला का मनन करने योग्य, सचित्र जीवन-चरित्र। स्त्री शिक्षा की अनूठी पुस्तक। साधारण, सजिल्द और राज संस्करण का मूल्य क्रमशः १॥), १॥।), ३)

१२–राजनीति शब्दावली Political Terms—राजनीति के हिन्दी-अंगरेज़ी, तथा अंगरेज़ी-हिन्दी पर्यायवाची शब्दों का उत्तम संग्रह। मूल्य ।–)

१३—नागरिक शिक्षा Elementary Civics—सरल भाषा में, नागरिकों के कर्त्तव्यों, और सरकार के कार्य्यों—सेना, पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धंधे, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों का विचार। दूसरा संस्करण। मू० ॥=)

१४ ब्रिटिश साम्राज्य शासन Constitution of the Br. Empire (ले०–श्री दयाशंकरजी दुबे एम. ए., और भगवानदास केला)—इंगलैंड की, तथा उसके साम्राज्य के स्वतंत्र तथा परतंत्र उपनिवेशों, एवं अन्य भागों की शासन पद्धति का सरल सुबोध वर्णन। मूल्य केवल ॥।=)

१५–श्रद्धाञ्जलि–"यह श्रद्धा के पथ में पूर्व और पश्चिम, नवीन और प्राचीन, स्त्री और पुरुष, धर्मी और विधर्मी सब की अर्चना कर रही है। वीर-पूजा में प्रेरणा, उत्साह और प्राण की मांग की गयी है।" इसमें २९ महापुरुषों के दर्शन हैं। मूल्य केवल ॥।=)

१६—भारतीय नागरिक—इसमें भारतीय नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों के अतिरिक्त, किसानों, ज़मींदारों लेखकों, सम्पादकों, विद्यार्थियों और अध्यापकों, तथा महिलाओं

और दलित जातियों आदि को देशोन्नति के लिए दी जाने वाली सुविधायें बतलायी गयी हैं। मूल्य ॥)

१७—भव्य विभूतियां (ले०—श्री शंकरसहायजी सक्सेना एम. ए., विशारद)—राणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह, लक्ष्मी बाई, महाराणा सांगा, दुर्गादास, और जयमल फत्ता का मनोहर जीवन चरित्र। त्याग, साहस और बलिदान का अनुपम उपदेश। मूल्य ॥=)

अन्य पुस्तकें।

संसार के सम्वत	॥-)	हिन्दी भाषा में अर्थ शास्त्र	=)
भारतीय अर्थ शास्त्र प्रथम भाग	१॥)	हमारा प्राचीन गौरव	-)
,, द्वितीय भाग	१)	हिन्दी भाषा में राजनीति	-)
		राजा महेन्द्रप्रताप	॥=)

इस ग्रन्थ माला की कई पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; नार्मल स्कूल, इन्दौर; काशी विद्यापीठ; गुरुकुल कांगड़ी; गुरुकुल गुजरान वाला; प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन; आदि में पाठ्य पुस्तकें हैं; तथा संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, गवालियर, बड़ौदा, आदि में पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत हैं।

देश प्रेमी पाठकों को ये पुस्तकें मंगाकर पढ़नी चाहियें। प्रत्येक नगर या गांव में इनका प्रचार करने की आवश्यकता है।

भगवानदास केला

भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन.

नोट—जिन पुस्तकों के लेखक का नाम नहीं दिया गया है, वे श्री भगवानदास केला, वृन्दावन, की कृतियां हैं।

वार्षिक मू० ३) **'रेलवे समाचार'** एक प्रति का।-)

हिन्दी में यही एक ऐसा मासिक पत्र है, जो रेलवे सम्बन्धी ऐसी ठोस सामग्री प्रदान कर रहा है जो हिन्दी के किसी भी वर्तमान पत्र-पत्रिका में ढूंढे नहीं मिल सकती। इसमें व्यापार और रेलवे विषयक उच्च कोटि के लेख तथा रेलवे का इतिहास, रेटें, नीति, क़ानून-क़ायदे तथा तत्सम्बन्धी हाईकोर्टों के फ़ैसले रहते हैं। हिन्दी के प्रायः सबही लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों तथा पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। अतएव प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का कर्तव्य है कि वह अपनी क्रियात्मक सहानुभूति का प्रदर्शन कर, उसके संचालकों को सत्साहित्य की अभिवृद्धि के लिये उत्साहित करे।

नोट:—अन्डर चार्ज, ओवर चार्ज अथवा रेट आदि का रेलवे से झगड़ा पड़ गया हो, तो 'रेलवे समाचार' कार्यालय से उचित और पुख़्ता सलाह लेकर लाभ उठाना न भूलें। कार्यालय आपकी सेवा सहायता के लिये सदैव प्रस्तुत है।

रेलवे का क़ायदा क़ानून—इस पुस्तक में रेलवे सम्बन्धी समस्त क़ायदे क़ानून, रेटों आदि का समावेश है। हिन्दी में अपने विषय की यह एक ही पुस्तक है। प्रत्येक मनुष्य को इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिये। मू० ४)

पत्र लेखक—सराकारी विभागों से सम्बंधित पत्रों के अंगरेज़ी मसौदे, तथा हिन्दी में उनका सार बढ़िया ढंग से दिया गया है। मूल्य ३); (प्रेस में)।

बिल्टी नोंध रजिस्टर—इसमें अपनी बिल्टो की नक़लें नोंधिये, और, साथ ही रेल, डाक, तार कस्टम आदि के क़ायदे क़ानून से भी परिचित हूजिये। मूल्य ॥।), डाक व्यय पृथक्।

मैनेजर, रेलवे समाचार कार्यालय, ४४। स्ट्रैन्ड रोड, कलकत्ता